शोधादर्श

३९

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
नवम्बर १९९९

डा० शशि कान्त की शोध कृति

The Hathigumpha Inscription of Kharavela and the Bhabru Edict of Asoka

का द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण (2nd enlarged edition) प्रकाशित हो गया है।

प्रकाशक : D. K. Printworld (P.) Ltd.,
'Sri Kunj', F-52, Bali Nagar, New Delhi-110015

मूल्य रु० 295/-

x x x x

डा० ज्योति प्रसाद जैन की लोकप्रिय कृति

Religion and Culture of the Jains

का चतुर्थ संस्करण (4th edition) प्रकाशित हो गया है। [1975 में प्रथमतः प्रकशित, द्वि. संस्करण 1977, और तृ. सं. 1983]।

प्रकाशक : Bharatiya Jnanpith,
18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003

मूल्य रु० 65/-

x x x x

श्री रमा कान्त जैन की साहित्यिक कृति

गिलास आधा भरा है

प्रकाशक : ज्ञानदीप प्रकाशन,
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

मूल्य रु० 50/-

x x x x

डा० ज्योति प्रसाद जैन कृत

भारतीय इतिहास : एक दृष्टि का तृतीय संस्करण
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से, और

The Jaina Sources of the History of Ancient India का द्वि. सं. Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd., 54, Rani Jhansi Road, New Delhi-110055 से प्रकाशित हो रहे हैं।

संस्थापक एवं आद्य सम्पादक : (स्व.) डा० ज्योति प्रसाद जैन
प्रबन्ध/प्रधान सम्पादक एवं प्रकाशक : श्री अजित प्रसाद जैन
महामन्त्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ–२२६ ००४
सम्पादक मंडल : डा० शशि कान्त, श्री रमा कान्त जैन

णाणं णरस्स सारं - सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श-३९

वीर निर्वाण संवत् २५२६ नवम्बर १९९९ ई०

★ विषय-क्रम ★

१. गुरुगुण-कीर्तन : विमलार्यं —श्री रमा कान्त जैन २२७

२. Proto-historic Tradition—डा० ज्योति प्रसाद जैन २३१

३. सम्पादकीय : बालाचार्य जी की विचित्र आध्यात्मिक
यात्रा से उभरे कुछ प्रश्न —श्री अजित प्रसाद जैन २३६

४. जैन दर्शन में मोक्ष तत्त्व—एक वैज्ञानिक विश्लेषण
—डा० (श्रीमती) सूरजमुखी जैन २४७

५. पश्चिमी मालवा के जैन हस्तलिखित-ग्रन्थ भण्डार
—डा० सुरेन्द्र कुमार आर्य २५८

६. धर्म का मर्म—अहिंसा —श्री नरेन्द्र सिंह चौधरी २६०

७. कामदेव मन्दिर—एक विमर्श —जस्टिस एम० एल० जैन २६५

८. संस्मरण–समीक्षा :
गिलास आधा भरा है ! —श्री कैलाश चन्द्र जैन २६६

राष्ट्र की अस्मिता संकट में —डा० शशि कान्त २६८

क्रान्ति की स्वर लहरी २६९

जन-मन का आक्रोश २७०

बीस-सूत्री कार्यक्रम २७१

१०. कारगिल के जवान —श्री राजीव कान्त जैन २७१

११. परिचर्चा : विद्वत् परिषद के चुनाव और विभाजन —श्री अजित प्रसाद जैन २७२

१२. विचार-विन्दु : भट्टारक–तब और अब —श्री अजित प्रसाद जैन २७७

१३. जिज्ञासा —श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' २८०

—श्री धन्य कुमार जैन २८२

—श्री शांतिलाल के० शह्रा २८३

—डा० अनिल कुमार जैन २८३

—श्री नरेश गुप्त २८४

—डा० शशि कान्त २८४

१४. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०, प्रगति प्रतिवेदन वर्ष १९९८–९९ —श्री अजित प्रसाद जैन २८५

१५. साहित्य सत्कार

डा० नेमीचन्द जैन : व्यक्तित्व और कृतित्व;
डा० नेमीचन्द के साहित्य-सिन्धु में से कुछ अमृत बिन्दु;
नमस्कार चिन्तामणि; अतिशय क्षेत्र बजरंगगढ़ —श्री अजित प्रसाद जैन २८८

तत्त्वानुशीलन; आस्था और अन्वेषण;
मन्दिर; श्रमण; मुक्कुडें; मानस चन्दन —श्री रमा कान्त जैन २९१

इतिहास के अनावृत्त पृष्ठ; आत्मा का वैभव;
सप्तसन्धान महाकव्य : एक समीक्षात्मक अध्ययन;
अंक दर्शन; द्वादश भाव रहस्य;
भारतीय स्वातंत्र्यलढ्यातील जैनांचे योगदान;
पयाम-ए-रहबर; Jinamanjari;
Biology in Jaina Treatise on Reals;
Jainism : A Pictorial Guide to the Religion of Non-violence —डा० शशि कान्त २९४

१६. समाचार विमर्श —श्री अजित प्रसाद जैन
बालाचार्य का वर्षायोग ३०२
पंच कल्याणक प्रतिष्ठाएं सादगी से ३०३

१७. समय रहते समाज चेते :
अहिंसा महाकुम्भ—एक नया तमाशा —डा० शशि कान्त ३०४

१८. अभिनन्दन : श्री अजित प्रसाद जैन सम्मानित ३०७
अन्य ३०८

१९. समाचार विविधा ३१०

२०. शोक संवेदन ३१८

२१. आभार ३२०

२२. पाठकों की दृष्टि में ३२०
डा० अभय प्रकाश जैन, डा० विजय कुमार जैन,
डा० श्रीरंजन सूरिदेव, प्रा० सौ० लीलावती जैन,
डा० महेन्द्र राजा जैन, श्री सुखमाल चन्द्र जैन,
श्री मनोहर मारवडकर, श्री चन्द्रकान्त बाली,
आचार्य गोपीलाल अमर, श्री सुन्दर सिंह जैन,
डा० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, श्री कुन्दन लाल जैन,
श्री प्रेम कुमार जैन, डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल,
श्री ज्ञानचन्द्र खिन्दूका, डा० चीरंजी लाल बगड़ा,
श्री सुभाष रणदिवे, श्री लालचन्द्र जैन 'राकेश',
प्रो० सुरेन्द्र कुमार जैन, श्री गुलाब चन्द्र जैन,
श्रीमती गीता जैन, पं० शिवचरन लाल जैन,
श्री शिरीष कान्त, श्री मूलचन्द जैन, श्री शान्ति प्रकाश जैन,
पं० सुमेर चन्द जैन, डा० (कु०) आराधना जैन 'स्वतन्त्र',
श्रीमती वासंती शहा, श्री मदन मोहन वर्मा,
श्री मनोज कुमार जैन 'निर्लिप्त', जस्टिस एम० एल० जैन

२३. इस अंक के लेखक ३३३

२४. अनुक्रमणिका शोधादर्श ३७ से ३९ ३३४

वर्ष २००० से वार्षिक शुल्क ५० रु० (मनीआर्डर द्वारा प्रेष्य)

आवश्यक

डाक दरों तथा कागज आदि के मूल्यों में वृद्धि के कारण शोधादर्श का वार्षिक शुल्क ५०/- रु० और एक प्रति का मूल्य २० रु० करना पड़ा है। अतः कृपया वर्ष २००० का वार्षिक शुल्क ५० रु० (पचास रुपये) मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति उ. प्र., ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' को भेजने का अनुग्रह करें।

—प्रबन्ध सम्पादक

आवश्यक सूचना

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमन्त्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिए और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिए। यथासम्भव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

शोधादर्श में **समीक्षार्थ** पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक / पत्रिका सम्पादक को 'ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

—प्रबन्ध सम्पादक

निवेदन

सुधि पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा उद्‌बोधन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

– सम्पादक मण्डल

मुद्रक : रत्न-ज्योति प्रेस, चारबाग, लखनऊ-४ (उ० प्र०)

गुरुगुण-कीर्तन

विमलार्य

जारिसयं विमलंको विमलं को तारिसं लहइ अत्थं ।
अमयमइयं व सरसं सरसं चियपाइयं जस्स ।।

—कुवलयमाला, ३.२७

भावार्थ—आत्मज्ञानी विमल को कौन तारेगा (भवसागर से) जिनके विमलंक (विमल अंकित है ऐसा काव्य) में अमृतमय और परम सरस चित्त को लुभामे वाला अर्थ प्राप्त होता है, अर्थात् वह तो स्वयं तरने वाले हैं ।

उपर्युक्त पद्य में उद्योतनसूरि (७७९ ई०) ने जिस **विमलंक** काव्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है वह **पउमचरियं** (पद्मचरित) काव्य है जिसके प्रत्येक उद्देश/पर्व की अन्तिम गाथा में 'विमल' शब्द का विविध प्रकार से अंकन (प्रयोग) कवि ने किया है । प्रथम उद्देश की गाथा ३२ में रचनाकार ने इस कृति को 'पुराण' संज्ञा दी है और गाथा ९० में इसे **रामदेवचरियं** कहा है । पर्व १०३ की गाथा ७५ एवं पर्व ११८ की गाथा ११४ व ११८ में **राहवचरियं** (राघवचरित), तथा पर्व ११८ की ही गाथा ९३ में **हलहरचरियं** (हलधरचरित), गाथा ९७ में **पउमकित्तणकहाए** (पद्मकीर्तनकथा), गाथा १०१ में **रामारविंदचरियं** तथा गाथा १०२ में **रामचरियं** (रामचरित) नामों से भी इसे अभिहित किया गया है ।

२५वें उद्देश की गाथा ७ व ८ के अनुसार राजा दशरथ की अपराजिता नाम की रानी ने विकसित उत्तम पद्म (कमल) के समान मुख वाले पुत्र को जन्म दिया था और पद्म दल की कान्ति युक्त नेत्रों वाले उस पुत्र का नाम पद्म रखा गया था । अतः राजा दशरथ के उस पुत्र पद्म की कथा को वर्णन करने वाले इस ग्रन्थ को पद्मचरित (**पउमचरियं**) नाम दिया गया । चूंकि जनमानस में राजा दशरथ का उक्त पुत्र पद्म 'राम' नाम से विख्यात रहा है, अतः ग्रन्थकार ने ग्रन्थ को 'रामदेवचरित', 'राघवचरित', 'रामारविंदचरित' और

'रामचरित' नामों से भी अभिहित किया है। जैन परम्परा के त्रिषष्ठिशलाका पुरुषों में राम की गणना आठवें बलभद्र के रूप में है, अतः उन्हें 'हलधर' और 'सीरि' नामों से भी अभिहित किया गया। इस परम्परा में दशरथ-पुत्र लक्ष्मण आठवें नारायण अथवा वासुदेव और लंकाधिपति रावण आठवें प्रतिनारायण अथवा प्रति-वासुदेव माने गये हैं। इन दोनों का कथानक भी इस ग्रन्थ में वर्णित है। चूंकि जैन परम्परा के अनुसार नारायण लक्ष्मण और प्रति-नारायण रावण नर्कगामी हुए और केवल बलभद्र राम ने अन्त में निर्वाणलाभ किया, ग्रन्थकार ने राम अर्थात् पद्म को कथानायक मान कर ग्रन्थ का नामकरण पद्मचरित (**पउमचरियं**) किया।

जैन रामकथा सम्बन्धी अधुना ज्ञात सर्वप्राचीन उपलब्ध लिखित ग्रन्थ यह **पउमचरियं** हीं है। इसका कथानक आदिकवि वाल्मीकि कृत संस्कृत **रामायण** से भिन्नता लिये हुए है। इसका आधार, जैसा कि प्रथम उद्देश की गाथा ८-११ और अन्तिम पर्व ११८ की गाथा १०२ में अंकित है, **नामावलिय** और पूर्व (जैन आगम के बारहवें अंग दृष्टिप्रवाद का एक भाग) में निबद्ध तथा आचार्य परम्परा से प्राप्त पद्मचरित (रामचरित) हैं जिसे प्रथमतः वीर जिन (भगवान महावीर) ने कहा था और उनके पश्चात उनके शिष्यों ने धर्म का आश्रय लेकर उसे कहा और तदनन्तर साधु परम्परा से लोक में वह प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ।

इस ग्रन्थ की रचना जैन महाराष्ट्री प्राकृत भाषा में हुई है। इसमें ११८ उद्देश/पर्व अर्थात् सर्ग हैं। ग्रन्थ में प्रयुक्त मुख्य छन्द गाथा (आर्या छन्द) है। इन गाथाओं का परिमाण लगभग ९००० अनुमानित किया जाता है।

अन्तिम पर्व की गाथा १०३ में इस चरित काव्य को पूर्ण किये जाने का समय इस प्रकार निबद्ध है—

'पञ्चेव य वाससया, दुसमाए तीसवारिससंजुत्ता।
वीरे सिद्धिमुवगए, तओ निबद्ध इमं चरियं॥'

अर्थात्, इस दुषमाकाल में वीर (भगवान महावीर) के सिद्धि

(निर्वाण) प्राप्त करने के पाँच सौ तीस वर्ष बाद यह चरित निबद्ध किया गया। किन्तु इस स्पष्ट उल्लेख के होते हुए भी विद्वानों में इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में पर्याप्त ऊहापोह और मतभेद रहा है और इसे प्रथम शती ईस्वी से लेकर आठवीं शती ईस्वी तक की रचना प्रतिपादित करने का प्रयास हुआ है। सभी अन्तः साक्ष्यों, बहिर्साक्ष्यों और विभिन्न विद्वानों के मतों का परीक्षण करने के उपरान्त डा० ज्योति प्रसाद जैन ने The Jaina Sources of the History of Ancient India में महावीर निर्वाण की तिथि कार्तिक कृष्ण १५, ईसा पूर्व ५२७, प्रतिपादित की है। तदनुसार अपनी उक्त पुस्तक में तथा **श्रीमद् राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थ** में प्रकाशित अपने लेख **'विमलार्य और उनका पउमचरियं'** में उन्होंने इसकी रचना तिथि ईस्वी सन् ३ मानी है। डा० ल्यूमेन, पं० नाथूराम प्रेमी और पं० हरगोविन्ददास भी इसी रचना तिथि के समर्थक बताये गये हैं।

ग्रन्थकार विमल के विषय में, अन्तिम पर्व की नीचे उद्धृत गाथा ११७-११८ एवं ग्रन्थान्त पुष्पिका को छोड़कर, अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है—

राहू नामायरिओ, ससमयपरसमयगहियसब्भावो।
विजओ य तस्स सीसो, नाइलकुलवंसनन्दियरो ॥११७॥
सीसेण तस्स रइयं, राहवचरियं तु सूरिविमलेणं।
सोऊणं पुव्वगए, नारायण - सीरिचरियाइं ॥११८॥
इइ नाइलवंसदिणयरराहुसूरिपसीसेण महप्पेण पुव्वहरेण
विमलायरिएण विरइयं सम्मत्तं पउमचरियं ॥ —पुष्पिका

इनका क्रमशः भावार्थ है कि स्व सिद्धान्त और पर सिद्धान्त को जानने वाले राहू नामक आचार्य हुए, उनका नाइलकुलवंस (नागिलकुलवंश) को आनन्दित करने वाला विजय नामक शिष्य था और उसके शिष्य विमलसूरि ने पूर्व ग्रन्थों में आये हुए नारायण तथा हलधर के चरित को सुन कर यह राघवचरित रचा है। नागिलवंश के दिनकर राहूसूरि के प्रशिष्य पूर्वधर महात्मा विमलार्य (विमला-

चार्य) द्वारा विरचित यह पद्मचरित पूर्ण हुआ। तदनुसार रचनाकार का नाम विमलसूरि और विमलार्य होने तथा उनके नागिलवंश के आचार्य राहूसूरि के प्रशिष्य और विजयसूरि का शिष्य होने तथा पूर्वधर होने का पता चलता है।

विमलसूरि की आम्नाय को लेकर भी विद्वानों में पर्याप्त ऊहापोह रही है। कुछ उन्हें दिगम्बर मानते हैं, कुछ श्वेताम्बर और कुछ यापनीय और कुछ उन्हें संघभेद के पूर्व का। डा० ज्योति प्रसाद जैन का निष्कर्ष है कि "**पउमचरियं** में जहाँ अनेक बातें ऐसी पाई जाती हैं जो दिगम्बर मान्यताओं के अनुकूल हैं किन्तु श्वेताम्बर मान्यताओं के प्रतिकूल हैं, तो कुछ ऐसी बातें भी हैं जो श्वेताम्बर मान्यताओं के अनुकूल हैं और दिगम्बर मान्यताओं के प्रतिकूल हैं। साथ ही कुछ ऐसे भी तथ्य हैं जो दोनों ही परम्पराओं की मान्यताओं से विलक्षण हैं और दोनों में से किसी को मान्य नहीं हैं। इसका एक ही कारण है और वह यह कि **पउमचरियं** के कर्ता विमलार्य न दिगम्बर थे न श्वेताम्बर। चाहे वे संघभेद के पूर्व हुए हों अथवा थोड़े समय उपरान्त, उन्होंने स्वयं को दोनों में से किसी भी एक सम्प्रदाय से सम्बद्ध नहीं किया। वास्तव में वह एक ऐसे तीसरे दल के व्यक्ति थे जो संघ-विभाजन के विरुद्ध थे और समझौते या समन्वय द्वारा संघभेदरूपी फूट से महावीर के जैन संघ की रक्षा करने के लिये प्रयत्नशील थे। इसी कारण विमलाचार्य भी शिवार्य, उमास्वामि, आर्यमंक्षु, नागहस्ति, सिद्धसेन प्रभृति कई अन्य प्राचीन आचार्यों की भांति दोनों ही सम्प्रदायों में समान रूप से मान्य हुए एवं अपनाये गये।" प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, द्वारा प्रकाशित **पउमचरियं** पर अपनी प्रस्तावना में डा० वी० एम० कुलकर्णी ने जहाँ एक ओर डा० हर्मन जैकोबी के मत से सहमति व्यक्त करते हुए इस कृति को लगभग तीसरी शती ईस्वी के अन्त का प्रतिपादित किया है, वहीं उनकी आम्नाय के प्रश्न पर विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया है—"It would thus seem more

(शेष पृष्ठ २५७ पर)

PROTO-HISTORIC TRADITION

—Dr. Jyoti Prasad Jain

The traditional history of Jainism, from the earliest known times down to the age of Mahavira, the last Tirthankara (6th century B. C.), is principally based on the facts consistently maintained by this religion. In order to appreciate them, it would be advisable to keep in mind its primary assumption that the universe, with all its constituents or components, is without a beginning or an end, being everlasting and eternal, and that the wheel of time incessantly revolves, pendulum like in half-circles, one ascending and the other descending from the paradisical to the catastrophical period and back to the former. Thus, for practical purposes, a unit of the cosmic time is called Kalpa, which is divided into two parts, the Avasarpini (descending) and the Utsarpini (ascending), each with six sub-divisions.

Thus, in this part of the world the First Age of the present Avasarpini was of enormous, incalculable length, possessed conditions of Bhogabhumi when human beings lived in the most primitive stage, wholly dependent on nature. The Second Age was half as big as the former span, and conditions, though they gradually deteriorated, were those of a happy and contented primitive Bhogabhumi stage. In the Third Age, the process of degeneration continued, yet it was still a Bhogabhumi. Towards its end man began gradually to wake up to his environment, and conscious of the deteriorating conditions, felt for the first time the necessity of seeking guidance. The period, therefore, produced, one after the other, fourteen preli-

minary guides of man, or law-givers, known as Kulakaras or Manus. They were : Sumati, Pratishruti, Simankara, Simandhara, Kshemankara, Kshemandhara, Vimalavahana, Chakshushman, Yashman, Abhichandra, Chandrabha, Prasenajit, Marudeva and Nabhiraya. Nature had not remained so benevolent as before, doubts aud conflicts had begun to appear, and these earliest leaders of men met the situation in their own simplest of ways.

The last of them, Nabhiraya, had for his spouse Marudevi who bore him Rishbha or Adinatha, the 15th Manu (law-giver) and the 1st Tirthankara (expounder of religion), at the place which later developed into the city of Ayodhya (presently in the Indian State of Uttar Pradesh). Rishabha is supposed to be the harbinger of human civilization. He inaugurated the Karmabhumi (Age of Action), founded the social order, family system, and state and government; taught mankind the cultivation of land, different arts and crafts, reading, writing and arithmatic; and built villages, towns and cities. In short, he pioneered the different human activities as they were then understood and indulged in. He is also known as Ikshvaku, Swayambhu and Mahadeva. He had two daughters and a hundred sons. After having guided his fellow beings for a considerable time and fulfilled his mundane functions, Rishabha abdicated all temporal power in favour of his eldest son, Bharata, who gave his name to this country and became its first chakravartin ruler or paramount sovereign. Having renounced all worldly possessions and temporal authority, Rishabha repaired to the forest to lead a life of penance and austerity. He

attained Kevala-jnana (Supreme Knowledge) and became an Arhat or Jina at Prayaga (Allahabad). For a number of years he then preached to the suffering mankind his peace-giving creed of love and non-violence. He was the first preacher of **Ahimsa dharma**, and the first prophet of salvation. In the end he attained nirvana at Mt. Kailas (in Tibet). It was now the Fourth Age of the time cycle.

It is rather difficult to give an idea of the time when Rishabha flourished, but his antiquity may be guessed from the fact that he does not seem to have been unknown to the pre-Aryan Indus Valley civilization people some six to eight thousand years ago, nor to the early Vedic Aryans whose **Rigveda**, the first of the Vedas and the supposedly oldest book in world's library, alludes to him directly and indirectly in a number of its hymns and the Brahmanical puranas also make him out to be an early incarnation of the god Vishnu. In the last quarter of the 4th century B.C. Megasthenes, the Seleucid (Greek) ambassador to the court of the Indian emperor Chandragupta Maurya, recorded, on the basis of a tradition then current in this country, that the beginning of Indian history dated from 6462 years before that time, when the great Indians Dionysus and his son, Hercules, lived. From Megasthenes' description of them there is little doubt that Adideva (the First Lord) Rishabha and his son, Bharata, the first great warrior and king, are meant thereby. Bharata's younger brother, Bahubali, was also a prodigy of physical and spiritual strength, whose representation is the 57 feet high, world-famous colossus at Shravanablegola in the Karnataka State.

The ancient Indian script, Brahmi, is said to have received its name from that of a daughter of Rishabha, for whose benefit he had invented it.

Rishabha, the first Tirthankara, was followed by 23 others, who came one after the other at intervals varying in duration. Ajita, the next Tirthankara, was also born at Ayodhya, Sambhava at Shravasti, Abhinandana at Ayodhya, Sumati also at Ayodhya, Padmaprabha at Kaushambi, Suparshva at Varanasi, Chandraprabha at Chandrapuri, Pushpadanta at Kakandi, and Shitala at Bhaddilapura.

It appears that it was probably from the times of Sambhava to those of Pushpadanta, respectively third and the ninth Tirthankaras, that the Indus Valley civilization had continued to flourish, and that it was the age of Shitalanatha, the tenth Tirthankara, which saw the rise of the Vedic Aryans and their Brahmanical culture and civilization. The period in which the next nine Tirthankaras, namely, Shreyamsa born in Simhpuri, Vasapujya in Champapuri, Vimala in Kampilya, Ananta in Ayodhya, Dharma in Ratnapuri, Shanta, Kuntha and Ara, all three in Hastinapur, and Mallinatha in Mithilapuri, flourished, witnessed the gradual Aryanisation of the country and the expansion of the power of the Vedic Aryans. In the times of Munisuvrata, Nami and Nemi (Arishtanemi), respectively the twentieth, twenty-first and twenty-second Tirthankaras, the temporal power of the Vedic Aryan Kshatriyas, their sacrificial cult and the ascendancy of the Vedic Brahmins were at their zenith. But, it was also during this period that their decline and downfall had set. Rama, the hero of the Brahmanical Rama-

yana, is also the hero of the Jaina **Padmapurana,** and flourished in the age of the Tirthankara Munisuvrata (born in Rajagriha). It appears that Rama was probably the first great man to attempt a sort of reconciliation between the Brahmin (Vedic) and Shramana (Vratya) systems. It was also in this period that interpretations of the Vedic texts, prescribing animal sacrifice, were for the first time questioned in the Vedic fold itself, as is evident from the story of Vasu, Narada and Parvata, which it is curious to note, is found in both the Jaina and Brahmanical traditions. It is also not without significance that this Vasu was the ruler of Rajagriha which had been the birth place of the twentieth Tirthankara. His successor, Tirthankara Nami, who was born at Mithila in Videha (North Bihar), seems to have been instrumental, through his teachings, in the initiation of the mystico-spiritualistic thought which gave rise to the philosophy of the Upanishads. This philosophy was opposed to the sacrificial cult and its chief centre happened to be Mithila. In fact, these events marked the beginning of the movement for the revival of Shramana Dharma in the Later Vedic Age.

[इस सन्दर्भ में शोधादर्श-१६-१७ के पृ० १२-२३ पर 'मानव सभ्यता के आदि प्रस्तोता—ऋषभदेव' भी दृष्टव्य है ।—शशि कान्त]

सम्पादकीय

बालाचार्य जी की विचित्र आध्यात्मिक यात्रा से उभरे कुछ प्रश्न

दि० ८ जुलाई, १९९९, के 'जैन गजट' में प्रकाशित समाचार—"सागवाड़ा (राजस्थान)—श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र योगीन्द्र गिरि की १७०० फुट ऊंची पहाड़ी पर भगवान ऋषभदेव की ११ फुट उत्तुंग प्रतिमा, मान स्तम्भ व चौबीसी जिनालय का पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव ११ से २३ जून तक बालाचार्य श्री योगीन्द्र सागर जी के ससंघ सानिध्य में भारी सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। २१ जून को महासभा द्वारा विशेष सम्मान समारोह सम्पन्न हुआ जिसमें महासभा के केन्द्रीय संगठन मंत्री (सह प्रान्तीय कार्याध्यक्ष) ने पंच कल्याणक के १०८ मुख्य पात्रों का चुंदड़ी के साफे तथा मोतियों के सतलड़े हार पहना कर सम्मान किया। महासभा के पदाधिकारी एवं कार्यकर्ता बड़ी संख्या में मौजूद थे जिन्हें राजस्थान के विभिन्न नगरों से लाने के लिए निःशुल्क बस सेवा उपलब्ध कराई गई थी।……२२ जून को ज्ञान कल्याणक के दिन श्रवणबेलगोला के भट्टारक स्वामी श्री चारुकीर्ति जी के संदेशानुसार, कोल्हापुर, चेन्नई तथा ज्वालमालिनी के भट्टारकों की उपस्थिति में……पीठाधीश भट्टारक स्वामी बालाचार्य योगीन्द्र सागर जी को डोली में बिठा कर भव्य शोभा यात्रा निकाली गई।……बीस हजार श्रद्धालुओं की जय-जयकार व नाच-गान करती भीड़ देखते ही बनती थी। चातुर्मास उपरान्त नवम्बर मास में उनका पट्टाभिषेक समारोह आयोजित होगा।"

इस समाचार की प्रतिक्रिया में हमें अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद द्वय में से एक के विद्वान अध्यक्ष डा० रमेश चन्द्र जी का एक लेख "साधु संस्था खतरनाक मोड़ पर" प्राप्त हुआ है। यह लेख दिशा बोध के अगस्त १९९९ के अंक में भी प्रकाशित हुआ है। धर्म मंगल आदि कुछ अन्य पत्रिकाओं में भी

प्रकाशित हुआ है। माननीय डाक्टर साहब ने बालाचार्य जी के इस अप्रत्याशित उपक्रम से अत्यन्त व्यथित होकर प्रश्न किया है कि—

"क्या नग्न दिगम्बर जैन मुनि को डोली में बैठाल कर भव्य शोभा यात्रा निकालना मुनि पद का अवमूल्यन नहीं है? यदि मुनि को पैरों से चलने की या पैरों से ठहरने की सामर्थ्य नहीं रहे तो उसे सल्लेखना ग्रहण कर लेना चाहिए, यह हमारे आगम ग्रन्थ कहते हैं।"

हमारी समझ में यह नहीं आ रहा है कि डाक्टर साहब ने इस आगम उपदेश की ओर उन महामुनियों, श्रमणराजों व आर्यिका शिरोमणियों का ध्यान क्यों नहीं आकर्षित किया जो शारीरिक अशक्तता के होते हुए भी उत्तर से दक्षिण, पश्चिम से पूर्व तक के दीर्घ विहार डोली में बैठ कर करते रहे हैं और कर रहे हैं, भले ही डोली में बिठाल कर किसी दिगम्बर साधु की शोभा यात्रा इसके पूर्व कभी न निकाली गई हो।

डाक्टर साहब ने अपने लेख में आगे प्रश्न किया है कि—"क्या समाज इन साधु नामधारी बालाचार्य को भट्टारक पद पर अभिषिक्त कर जो जिनोक्त मार्ग में आरुढ़ हैं उनका अवमूल्यन होने का रास्ता खोलेगी? निश्चित रूप से यदि कहीं की भी समाज ने यह निर्णय लिया तो वह उसका व उन मुनि नामधारी का आत्मघाती कदम होगा। अ० भा० दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद एक मत से **किसी दिगम्बर मुनि के भट्टारक पद पर अभिषिक्त होने का जोरदार विरोध करती है तथा अपने समस्त सदस्यों का आह्वाहन करती है कि उपर्युक्त नूतन भट्टारकीय पट्टाभिषेक समारोह का पुरजोर बहिष्कार करें और इसे सम्पन्न न होने दें तथा इसके विरोध में खुल कर आवाज उठाएं।** समस्त अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संस्थाओं से निवेदन है कि उपर्युक्त भट्टारकीय पट्टाभिषेक समारोह का पूरा-पूरा विरोध करें, यह जैनत्व और दिगम्बरत्व की रक्षा का प्रश्न है। श्रवणबेलगोला के भट्टारक स्वस्ति श्री चारुकीर्ति जी महाराज से हमारा नम्र निवेदन है कि उपर्युक्त समारोह को आप अपना किसी भी प्रकार का समर्थन न दें। यदि यह बुरी आंधी

एक बार चल पड़ी तो **आज जो अनेक शिथिलाचारी साधु भट्टारक बनने का स्वप्न देख रहे हैं, उनके भट्टारक बनने पर साधु संस्था को बहुत बड़ी चोट पहुंचेगी।"**

दिशा बोध के उसी अंक में-सुप्रसिद्ध साहित्यकार-पत्रकार श्री नीरज जैन का लेख **"कब चेतेगी दिगम्बर जैन समाज"** भी प्रकाशित हुआ है। विद्वान लेखक के अनुसार **"कथित आचार्य की भट्टारक दीक्षा के यदि ढोल पीटे जा रहे हैं तो यह किसी प्रकार मुनि भक्ति तो नहीं है।** यह तो 'अन्तर रागादि धरै जेह, बाहर धन-अम्बर से सनेह' वाले कुगुरु के प्रति दर्शायी गई गुरु-मूढ़ता ही है। पर इसे समझेगा कौन ?"

दिशा बोध के विद्वान सम्पादक जी ने भी अपने सम्पादकीय लेख में एक दिगम्बर मुनि द्वारा भट्टारक पद ग्रहण करना एवं पालकी में बैठ कर जलूस निकलवाना तथा उसमें तीन-तीन भट्टा-रकों की उपस्थिति तथा बीस हजार अंध-श्रद्धालु भक्तों की भीड़ होने को जिन शासन में अकल्पनीय स्थिति बताया है। इसे एक और **धर्म-धक्का** लगाने की कोशिश बताते हुए उन्होंने एक ज्वलन्त प्रश्न भी किया है कि—**"क्यूं किसी दिगम्बर जैनाचार्य ने इस पर अब तक अपनी जुबान नहीं खोली ? यह कैसा तटस्थ भाव है** जब हमारे जैनत्व की अस्मिता ही दांव पर लगी है ? किसी भी स्थिति में हमें ऐसी किसी हरकत का मौन अनुमोदन भी नहीं होने देना है जिससे हमारा दिगम्बरत्व ही समाप्त हो जाए...... ।"

बालाचार्य जी की इस विचित्र आध्यात्मिक यात्रा पर हम भी हत्प्रभ हैं। इसे प्रगति कहें या अपगति, इस पर हर्षित हों या व्यथित ! इस घटना पर हमारी प्रतिक्रिया उपरोक्त तीनों माननीय विद्वानों से किंचित भिन्न है। थोड़ा विचारने पर प्रतीत हुआ कि इसमें कुछ भी अप्रत्याशित नहीं घटित हुआ है और यह तो बाला-चार्य जी की सुविचारित योजना की ही परिणति है। उन्होंने एक नए दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र के रूप में सागवाड़ा के निकट की पहाड़ी पर 'योगीन्द्र गिरि' के नाम से मन्दिर परिसर का तथा

उसके सामने की पहाड़ी पर **'भट्टारक जी की भव्य उत्तुंग नसिया'** का निर्माण अपने ही मार्ग दर्शन एवं निर्देशन में अपनी भट्टारक पीठ के रूप में कराया है। **'पीठाधीश भट्टारक स्वामी'** की पदवी तो वे पहले ही ग्रहण कर चुके हैं। भट्टारकों की डोली या पालकी में शोभा-यात्रा तो सैकड़ों वर्षों से निकाली जाती रही है तो भट्टारक योगीन्द्र सागर की डोली-शोभा यात्रा में नई बात क्या है और उसमें आपत्ति ही क्यों हो? चातुर्मासोपरान्त उनका भट्टारकीय पट्टाभिषेक महोत्सव तो एक औपचारिकता की पूर्ति मात्र ही है। यथार्थ में यह अपनी ही भट्टारक पीठ पर समारोह पूर्वक प्रतिष्ठित होना मात्र है जो नूतन ग्रह प्रवेश जैसा ही है। विद्वत् परिषद के अध्यक्ष जी का अपनी परिषद के समस्त सदस्यों का इस महोत्सव को सम्पन्न न होने देने का आह्वाहन करने का क्या औचित्य है, समझ में नहीं आता तथा मठाधीश भट्टारक स्वामी श्री चारुकीर्ति जी से योगीन्द्र सागर जी के इस भट्टारकीय उपक्रम को अपना समर्थन न देने की गुहार करना तो और भी विचित्र लगता है। चारुकीर्ति जी वर्तमान के सभी भट्टारकों में अग्रणी हैं, उनके संदेश से ही यह स्पष्ट होता है कि योगीन्द्र सागर जी ने 'मठाधीश भट्टारक' की उपाधि उनकी पूर्व सहमति, अनुमोदन व समर्थन से ग्रहण की है तथा कोल्हापुर, चेन्नई व ज्वालमालिनी पीठों के भट्टारक गण उन्हीं के निर्देश या परामर्श से ही योगीन्द्र सागर जी के डोली-जुलूस की शोभा बढ़ाने के लिए पधारे थे। चारुकीर्ति जी पहले ही अपने दो शिष्यों को भट्टारक पीठों पर अभिषिक्त कर चुके हैं जिनमें से एक के लिए तो नवीन पीठ 'कनक गिरि' का सृजन भी किया गया है। पीठाधीश भट्टारक स्वामी योगीन्द्रसागर के रूप में भट्टारक प्रथा के पुनः उत्तर भारत में जड़ जमाने पर तो उन्हें हर्ष ही हुआ होगा तथा यदि और भी दिगम्बर वेशी शिथिलाचारी साधु नए अतिशय क्षेत्रों के रूप में अपने लिए भट्टारक पीठों का निर्माण कर उन पर या अन्य तीर्थ क्षेत्रों पर अनुकूल वातावरण बना कर उनके भट्टारक स्वामी बन बैठें, तो उनके इस

उपक्रम का चारुकीर्ति स्वामी जी द्वारा स्वागत किया जाना ही स्वाभाविक होगा। अपने परिवार की वृद्धि पर किसे हर्ष नहीं होता! उनके द्वारा यह मानना कि इससे दिगम्बर जैन साधु संस्था को बहुत बड़ी चोट लगेगी, स्वयं अपने अस्तित्व का विरोध करने जैसा होगा।

हमारे कई बहुमान्य दिगम्बर जैन आचार्य/मुनिराज आजकल अपने या अपने गुरु के नाम से छोटी-बड़ी प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध बस्तियों में या निकट की वीरान पड़ी पहाड़ियों/टेकरियों पर करोड़ों की लागत से नए अतिशय क्षेत्रों का निर्माण कराने में जुटे हैं। इन स्थलों का कोई पौराणिक-ऐतिहासिक महत्व नहीं है, फिर भी अपनी प्रवचन कला से तथा/या मन्त्र-तन्त्र वेत्ता के रूप में ख्याति अर्जित करने में कुशल इन साधुओं को भक्तों की भीड़ जुटाने तथा अपने प्रोजेक्ट पर भरपूर धन लगवाने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती। योगीन्द्र गिरि के अलावा पुष्प गिरि, मंगल गिरि, दर्शन गिरि, नेम गिरि आदि कुछ ऐसे ही नव सृजित अतिशय क्षेत्र हैं जिनमें विशेष अतिशय तो यही है कि इनके निर्माण पर अल्प काल में ही करोड़ों का व्यय हो चुका है और हो रहा है, और यह तब है जब कि हम विगत पचास वर्षों में भी चरम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की जन्म स्थली कुण्डग्राम-वैशाली के विकास के लिए कुछ लाख रुपए भी नहीं जुटा पाए हैं। ऐसा ही कुछ हाल है छठे तीर्थंकर भगवान पद्मप्रभु की जन्म स्थली तथा चन्दना द्वारा श्रमण महावीर को दिये गए आहार दान से विशेष ख्याति को प्राप्त कौशाम्बी तीर्थ क्षेत्र का। उस क्षेत्र के समुचित विकास के लिए उत्तरांचल दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी द्वारा कौशाम्बी के बस स्टैन्ड तथा श्वेताम्बर जैन मन्दिर के समीप ही एक बड़ा भू खण्ड क्रय करके स्थानीय क्षेत्र विकास कमेटी को लगभग बीस वर्ष पूर्व उपलब्ध करा दिया गया था परन्तु वह कमेटी अब तक धनाभाव का रोना रोते हुए उस पर एक ईंट भी खड़ी नहीं कर सकी है।

हमें किंचित भी आश्चर्य नहीं होगा यदि नव सृजित तथा-

कथित अतिशय क्षेत्रों के प्रणेता मुनिराज निकट भविष्य में ही इन्हें अपनी स्थिर आवास स्थली बना लें तथा स्वयं को या अपने किसी प्रिय शिष्य को उसका पीठाधीश भट्टारक घोषित कर दें। (गणिनी आर्यिका–शिरोमणि ज्ञानमती जी अपने शिष्य क्षुल्लक श्री मोती सागर जी को वर्षों पूर्व अपने मार्ग दर्शन में निर्मित जम्बूद्वीप परिसर का पीठाधीश घोषित कर चुकी हैं, यद्यपि उन्होंने क्षुल्लक जी को अभी 'भट्टारक' नाम नहीं दिया है।) नवोदित अतिशय क्षेत्र नेमगिरि का निर्माण कराने वाले आचार्य श्री दयासागर म० दो वर्ष पूर्व अपने तत्कालीन चातुर्मास स्थल सिद्धक्षेत्र पावागिरि से प्रसारित एक परिपत्र में उत्तर भारत के सभी तीर्थ क्षेत्रों के समुचित विकास एवं सुप्रबन्ध को सुनिश्चित करने के लिए उन पर भट्टारक पीठों की स्थापना की जोरदार वकालत कर चुके हैं (देखें शोधादर्श-३४, मार्च १९९८)।

डा० रमेश चन्द्र जी अपने उपर्युल्लिखित लेख में आगे लिखते हैं—"विश्व में शायद ही कोई ऐसा धर्म हो जो अपने साधुओं को इतना बहुमान और आदर देता हो जितना दिगम्बर जैन धर्म का श्रद्धालु श्रावक अपने साधुओं को देता है। उसकी श्रद्धा के अतिरेक का लाभ उठाकर आज कुछ साधु ऐसे भ्रष्ट मार्ग पर आ गये हैं कि तन पर वस्त्र को छोड़ कर आज उनके पास सब कुछ है। जाने के लिए कार, रहने के लिए बंगले, धनवान भक्त सेठों से बातचीत करने के लिए सेल्युलर फोन, देखने के लिये महंगे रंगीन टी.वी., खाने के लिए फ्रिज में जमाई हुई बढ़िया मलाई और कुल्फी तथा सुस्वाद भोजन, धन के नाम पर उनके या उनके भक्तों के नाम लाखों, करोड़ों का बैंक बैलेन्स, बड़-बड़े शहरों में खरीदी हुई बहुमंजिली बेशकीमत कोठियां, शरीर पर लगाने को महंगे-महंगे तेल, गर्मियों में पंखे और कूलर तथा जाड़ों में हीटर, इत्यादि, तथा प्रति दिन सैकड़ों नर-नारियों द्वारा चरण-वन्दना और जय-जयकार, बैंड-बाजे, रथ, हाथी, घोड़े, नृत्य और संगीत। इन सब ठाट-बाटों को देख कर हीन पुण्य व्यक्ति का भी मन मचल उठता है—काश ! हम भी ऐसे मुनि बन जाते।"

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद के विद्वान अध्यक्ष, प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी भी ऋषभ देशना (मा०) के अगस्त १९९९ के अंक में प्रकाशित अपने लेख "शिथिलाचार: एक अनुचिन्तन" में लिखते हैं—

"परीषह बाईस होते हैं। उनमें से कुछ परीषहों से बचने के लिए शार्टकट रास्ते भी तलाशे जाने लगे हैं, जैसे ऊष्ण और शीत परीषह से बचने के लिए अब कहीं-कहीं कूलर और हीटर का सहारा लेने में कुछ साधुओं को हिचक नहीं होती, दंश मशक परीषह से...... छुटकारा पाने के लिए कछुआ छाप अगरबत्ती अथवा गुडनाइट या मार्टिन सरीखे साधनों को अपनाए जाते भी हमने देखा है। ऊंची-नीची कठोर किन्तु निर्दोष भूमि जन्य बाधा को शान्ति से सहन करना शैय्या परीषह जय कहलाता है। सुना है (देखा नहीं है) कि एक संघ में इसका भी विकल्प ढूंढ लिया गया है। इस संघ के साधु डनलप के गद्दों पर टाट लपेट कर उन्हें सोने के काम में लाते हैं। अरति, याचना, अलाभ, सत्कार—पुरस्कार आदि परीषहों का सामना करने के अवसर भी पहले से काफी कम होते जा रहे हैं। ......अब हमारे साधु वृन्द भी सुविधा भोगी होते जा रहे हैं। सुविधाओं में रहने और जीने की आदत से ही शिथिलाचार का जन्म होता है।......"

डा० रमेश चन्द्र जी व प्राचार्य जी दोनों शास्त्र-मर्मज्ञ मुनि-भक्त एवं धर्मनिष्ठ सुश्रावक है जिन्होंने अधिकांश मुनि संघों को निकट से निरखा-परखा है। श्रमण शिथिलाचार के उपरोक्त चित्रण में उनसे कोई अतिरेक हुआ हो, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। श्री योगीन्द्र सागर जी भी ऐसे ही दिगम्बर वेशी साधुओं में से एक हैं। १६ जुलाई के धर्म मंगल के अंक में (पृष्ठ १० पर) राजस्थान के ही एक विज्ञ पाठक ने उनके विषय में निम्नलिखित जानकारी प्रस्तुत की है—

"बालाचार्य योगीन्द्र सागर (जन्म से ब्राह्मण) आचार्य सन्मति सागर जी (अंकलीकर वाले) के शिष्य और पट्टधारी हैं, अभिमानी

हैं। गुरू के पास नहीं रहते। फोन रखते हैं। कुछ दिन पहले भूत पिशाच को निकालते थे। अब यह धन्धा कम हो गया है। इस लिए सागवाड़ा में पहाड़ी का नाम योगीन्द्रगिरि रखकर, मन्दिर मान-स्तम्भ आदि बनवा कर भूगर्भ से प्राप्त मूर्तियां विराजमान करने का प्रचार चल रहा है। जादू-टोना चल रहा है।"

दिगम्बर जैन मुनि धर्म को दूषित करने वाले ऐसे शिथिलाचारी साधु के 'पीठाधीश भट्टारक' पदवी ग्रहण कर डोली में बैठ कर अपनी शोभा यात्रा निकलवाने से तथा चातुर्मासोपरान्त भट्टारकीय पट्टाभिषेक कराने से दिगम्बरत्व और जैनत्व की और क्या हानि होगी, यह हम नहीं समझ पा रहे हैं। जो हानि होनी थी वह तो वे पहले ही कर चुके हैं तथा अन्य ऐसे ही दिगम्बरत्व मुनि वेशियों द्वारा निरन्तर की जा रही है।

यह गौर तलब है कि योगीन्द्र सागर जी के इस डोली—जुलूस की शोभा बढ़ाने के लिए दिगम्बर जैन **धर्म संरक्षिणी** महासभा के अनेक पदाधिकारियों व कार्यकर्ताओं सहित उसके केन्द्रीय संगठन मन्त्री तथा राजस्थान, दिल्ली, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, बिहार आदि विभिन्न अंचलों से भारी संख्या में श्रद्धालु जन उपस्थित हुए थे। हमारे कतिपय मान्य नेता गण तो सार्वजनिक रूप से यह घोषित भी करते रहे हैं कि उनके लिए हर दिगम्बर वेश धारी मुनि पूज्य है। धर्म-संरक्षण के उदात्त उद्देश्य से दिए गए ऐसे वक्तव्यों से शिथिलाचार को बढ़ावा ही मिला है तथा मुनि के शिथिलाचार से उसकी जय-जयकार एवं चरण वन्दना में कोई अन्तर नहीं पड़ा।

वर्तमान में भट्टारक परम्परा का भले ही उत्तर भारत में लोप हो गया हो, पर दक्षिण भारत के भट्टारक-गण उत्तर भारत में धर्माचार्यों के रूप में आज भी समादृत हैं, मान्य हैं। वे अपने को अनेक मुनियों की तुलना में विशेष हीन भी नहीं समझते। श्रवणबेलगोला के मठाधीश स्वस्ति श्री चारुकीर्ति जी ने तो तीर्थंकर के विद्वान सम्पादक जी को कुछ समय पूर्व दिये गए एक साक्षात्कार में यह स्पष्ट रूप से कहा है कि आज के मुनियों में और हम भट्टा-

रकों में अब अन्तर ही केवल यह रह गया है कि वे निर्वस्त्र हैं जबकि हम सवस्त्र हैं; वे पूजा, विधान, प्रतिष्ठा आदि कराने के वे सब कार्य कर रहे हैं जो हम लोग करते रहे हैं। लगता है श्री योगीन्द्र सागर ने दिगम्बर वेश को त्यागे बिना ही भट्टारक पदवी ग्रहण कर इस अन्तर को भी समाप्त करने का उपक्रम किया है ताकि उनके जैसे अन्य दिगम्बर साधुओं का भट्टारक बनने का मार्ग प्रशस्त हो जाए।

भट्टारक प्रथा का उदय ही दिगम्बर जैन मुनि के शिथिल रूप में हुआ था जो तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों में धर्म संरक्षण के लिये कदाचित् आवश्यक भी हो गया था। किन्तु अब परिस्थिति भिन्न है, तथा देश की धर्म-निरपेक्ष गणतन्त्र व्यवस्था के अन्तर्गत दिगम्बर जैन मुनि की निर्दोष चर्या के पालन में कोई बाधा नहीं है तथा कई मुनिराज ऐसा कर भी रहे हैं। इस परम्परा के अप्रासंगिक हो जाने के कारण उत्तर भारत की भट्टारक पीठें शनैः-शनैः समाप्त होती गईं तथा लगभग ५० वर्ष पूर्व जयपुर श्रीमहावीरजी की गद्दी के भट्टारक स्वामी जी के निधन के साथ राजस्थान की जागरूक समाज द्वारा उत्तर भारत की अन्तिम भट्टारक पीठ भी समाप्त कर दी गई थी। यह भी कैसा विचित्र संयोग है कि राजस्थान में ही योगीन्द्र गिरि के पीठाधीश के रूप में योगीन्द्र सागर जी को अभिषिक्त कर के उत्तर भारत में भट्टारक परम्परा की पुनर्स्थापना का विधिवत प्रारम्भ हुआ है।

वर्तमान के भट्टारक गण दिगम्बर जैन साधुओं की किस श्रेणी में आते हैं, इसके विषय में स्थिति स्पष्ट नहीं है। मुनि, ऐलक तो वह स्पष्टतः हैं नही। अभी कुछ समय पूर्व भट्टारक चारुकीर्ति स्वामी जी ने अपने एक शिष्य को छुल्लक दीक्षा देकर कनक गिरि की नई भट्टारक पीठ पर अभिषिक्त किया था। इससे ऐसा लगता है कि भट्टारक गण अपने को जैन साधु की छुल्लक श्रेणी में गिनते हैं और कदाचित् इसीलिए वे मयूर-पिच्छी भी धारण करते हैं। दिगम्बर मुनिराजों के अतिरिक्त ग्यारह प्रतिमा धारी हमारे पूज्य

ऐलक व छुल्लक भी मयूर-पिच्छी धारण करने के अधिकारी हैं; पर शास्त्रि-परिषद के शास्त्र-मर्मज्ञ विद्वान अध्यक्ष प्राचार्य जी तो भट्टारकों के प्रथम दर्शन प्रतिमाधारी होने में भी संशय करते हैं तथा उनके द्वारा मयूर-पिच्छी धारण करना पिच्छी की मर्यादा का अवमूल्यन मानते हैं। (देखें **शोधादर्श**-३५, जुलाई ९८, पृष्ठ १५९-१६२)। **धर्म मंगल** की विदूषी सम्पादिका जी ने पत्रिका के बहु चर्चित 'भट्टारक विशेषांक' व कुछ परवर्ती अंकों में वर्तमान की कई भट्टारक पीठों का निरीक्षण करके जो चौकाने वाले तथ्य प्रस्तुत किये हैं, उससे तो उनकी कोई अच्छी छवि नहीं उभरती।

हमें योगीन्द्र सागर जी के भट्टारक बनने पर तो कोई ऐतराज नहीं है क्योंकि यह तो व्यक्ति के विवेक पर निर्भर करता है कि वह अपने हिताहित में क्या मार्ग अपनाए परन्तु इस प्रकरण पर हमें भी कुछ प्रश्न पूछने हैं। हम राजस्थान की समाज के प्रबुद्ध वर्ग से पूछना चाहते हैं कि योगीन्द्र सागर जी को भट्टारक पदवी ग्रहण करने के पूर्व ही या बाद में ही सही अब तक मुनि दीक्षा छेद करने के लिए बाध्य क्यों नहीं किया गया? क्यों उनका एक मुनि के रूप में चातुर्मास कराया जा रहा है, जय-जयकार की जा रही है, भक्ति-पूजा की जा रही है? एक बार उनकी मुनि दीक्षा छेद कर वस्त्र पहना दिए जाते, फिर चाहे वे नंगे होकर नागा साधुओं की तरह हाथी पर बैठ कर, अपनी सवारी निकलवाते या पालकी में बैठ कर। हम **तपस्वी सम्राट** के विरुद से अलंकृत उनके दीक्षा गुरु आचार्य श्री सन्मति सागर जी से प्रश्न पूछना चाहते हैं कि क्यों नहीं उन्होने अपने पट्टधारी शिष्य के शिथिलाचार की कभी भर्त्सना की, भट्टारक पदवी ग्रहण करने पर क्यों नहीं उन्हें मुनि-दीक्षा छेद करने का आदेश दिया तथा क्यों नहीं उनसे बालाचार्य पद छीना? आचार्य जी के इस प्रकरण पर मौन रहने से क्या यह ध्वनित नहीं होता कि इसे उनका भी अनुमोदन-समर्थन प्राप्त है तथा मठाधीश भट्टारक बनने के उपरान्त भी वे आचार्य सन्मति सागर जी के आचार्य पट्ट के उत्तराधिकारी बने रहे हैं तथा यथा

समय दिगम्बर जैनाचार्य का पद ग्रहण करेंगे ? तथा क्या शिष्य के दोष पूर्ण आचरण पर उसे समुचित प्रायश्चित—दण्ड न देने से उनके स्वयं के आचार्यत्व पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगता ?

हम अपनी अखिल भारतीय संस्थाओं के माननीय नेताओं से भी प्रश्न पूछना चाहते हैं कि उन्होंने योगीन्द्र सागर जी से मुनि-दीक्षा छेद करने की मांग क्यों नहीं की ? हम अपने माननीय विद्वत् जनों की परिषदों से भी पूछना चाहते हैं कि साधु वर्ग में पनपते-बढ़ते शिथिलाचार के मूक दर्शक बने रह कर क्या वे शिथिलाचार को बढ़ावा नहीं दे रहे तथा इस प्रकार निर्दोष चर्या का पालन करने वाले मुनिराजों का भी अवमूल्यन नहीं कर रहे ? समाज को शिथिलाचार के विरुद्ध शिक्षित करने, जागरूक करने के लिए अब तक क्या कदम उठाए हैं ? वे क्यों नहीं समाज को अपने विद्वानों के स्वयं के आचरण से, उनके द्वारा शास्त्र प्रवचनों से श्रावक वर्ग को शिक्षित करते कि साधु वर्ग को अनावश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराने से उन्हें सुविधाभोगी बनाना है, शिथिलाचार को बढ़ावा देना है, शील-शैथिल्य के दोषों को ढांकना उपगुहन नहीं, इससे पुण्य नहीं पाप का ही बंध होता है।

हमारी दोनों अखिल भारतवर्षीय विद्वत् परिषदों मे मूल परिषद का स्वर्ण जयन्ती महोत्सव इसी वर्ष समारोह पूर्वक सम्पन्न किया, कुछ प्रस्ताव पास किए तथा कुछ वरिष्ठ विद्वानों का सम्मान भी किया किन्तु हमें दुख है कि इन अति महत्वपूर्ण अधिवेशनों में भी हमारे शास्त्र-मर्मज्ञ विद्वत् जनों ने साधु वर्ग में बढ़ते-पनपते शिथिलाचार पर कोई चिन्ता व्यक्त नहीं की, न ही उसकी रोकथाम के लिए कोई कदम उठाए। डा० रमेश चन्द्र जी ने हमें अब पत्र द्वारा सूचित किया है कि उनकी वाली परिषद मुनि संघों में आ रहे शिथिलाचार के विरुद्ध शीघ्र ही एक प्रस्ताव पास करेगी। पर क्या अकेले प्रस्ताव पास करने से ही कभी कोई सुधार हुआ है ?

शास्त्र वेत्ता विद्वत् जन समाज की आंख होते हैं, उसके मार्ग-दर्शक होते हैं। अतः उनसे अपेक्षाएं भी अधिक की जाती हैं ?

(शेष पृष्ठ २४७ पर)

जैन दर्शन में मोक्ष तत्त्व—एक वैज्ञानिक विश्लेषण

—डा० (श्रीमती) सूरजमुखी जैन

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चार पुरुषार्थों में मोक्ष पुरुषार्थ को सभी ने सर्वश्रेष्ठ और उपादेय माना है ।[1] धर्म, अर्थ और काम से प्राप्त सुख की परिणति दुःख रूप ही होती है, केवल मोक्ष सुख ही अविनाशी, शाश्वत और निरापद सुख है । अतः सभी भारतीय दर्शनों के मनीषियों ने मोक्ष तत्त्व का गहन चिन्तन, मनन और विवेचन किया है, तदपि जैन दर्शन तथा अन्य दर्शनों की मान्यता में बहुत अन्तर है ।

वैशेषिक तथा नैयायिकों के अनुसार "नवानामात्मविशेषगुणानां बुद्धिसुखदुःखेच्छारागद्वेष प्रयत्नधर्माधर्मसंस्कारलक्षणानां सन्तानोऽत्यन्तमुच्छिद्यते सन्तानत्वात् प्रदीपवत्",[2] अर्थात् मोक्ष होने पर बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार रूपी विशेष गुणों का समूल नाश हो जाता है । बौद्ध मतानुसार जिस प्रकार तेल के चुक जाने पर दीपक न किसी दिशा को, न विदिशा को, न आकाश को और न पृथ्वी को जाता है, केवल बुझ जाता है, उसी तरह जीव क्लेशों का क्षय होने पर किसी दिशा, विदिशा, आकाश या पाताल को न जाकर शान्त हो जाता है ।[3] यहाँ सभी

(पृष्ठ २४६ का शेष)

हमारी समझ में भगवत् कुन्दकुन्द आचार्य द्वारा शोधित संस्कारित मूल आम्नाय में श्रद्धा रखने वाले विद्वत् जनों की परिषदों को धर्म की अस्मिता के सजग प्रहरी की सक्रिय भूमिका निभानी होगी । उन्हें समाज को धर्माचरण की प्रेरणा, शिक्षा तो देनी चाहिए ही, साथ ही समाज को गुरु के सच्चे व्यवहारिक स्वरूप के विषय में भी शिक्षित करना चाहिए ताकि वे साधु को साधु ही रहने दें तथा अपनी भक्ति के अतिरेक में व उसके प्रदर्शन में उसे अति सुविधा भोगी न बनाएं ।

—अजित प्रसाद जैन

पदार्थों को क्षणिक माना गया है। ये प्रदीप निर्वाण के समान जीव के बुझ जाने को उसका मोक्ष मानते हैं। वेदान्ती "आनन्दं ब्रह्मणो रूपम्" [4] कहकर केवल आनन्द स्वरूप को मोक्ष मानते हैं। ब्रह्मा-द्वैतवादियों के अनुसार जीव परमात्मा का अंश है, परमात्मा (ब्रह्म) ही लीला के लिये जगत की रचना करता है, मोक्ष होने पर जीव उसी में विलीन हो जाता है।[5] सांख्य के अनुसार "प्रकृति पुरुष विवेकोपलम्भात् स्वरूपे चैतन्यमात्रेऽवस्थानं मोक्षः" [6] अर्थात् प्रकृति और पुरुष का विवेक प्राप्त हो जाने पर पुरुष चैतन्य में स्थित हो जाता है। पुरुष (आत्मा) को न सुख होता है, न दुःख होता है, न वह बंधता है, न छूटता है, वरन् अनेक पुरुषों के आश्रय में रहने वाली प्रकृति बुद्धि आदि के द्वारा बन्धन को प्राप्त होती है, उसी के सम्बन्ध से आत्मा में बन्धन और मुक्ति का व्यवहार होता है। वास्तव में तो प्रकृति ही बंधती और छूटती है।[7] नैयायिक दर्शन में जीव जहां पर मुक्त होता है, वहीं रहता है, ऊपर गमन नहीं करता है। मण्डली मत के अनुसार मुक्त जीव सदा ऊपर को गमन करता रहता है, कभी ठहरता नहीं है। याज्ञिक मत का कहना है कि जीव की मुक्ति कभी होती ही नहीं— सदा संसारावस्था ही रहती है। और सदाशिव मत के अनुसार जो एक जीव सदा से ही मुक्त रहता है वही शिव है, वही ईश्वर है।[8]

जैन दर्शन के अनुसार 'बंधहेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्न-कर्म-विप्रमोक्षो मोक्षः', अर्थात् बंध के कारण मिथ्यात्वादि का अभाव तथा निर्जरा के द्वारा जीव का सम्पूर्ण कर्मों से छूट जाना ही मोक्ष है। मुक्त जीवों के औपशमिक, क्षायोपशमिक, औदयिक तथा पारिणामिक भावों में भव्यत्व का अभाव बताया गया है (औपश-मिकादिभव्यत्वानां च); पारिणामिक भावों में उनके केवल जीवत्व रहता है, और इसके अतिरिक्त क्षायिक-सम्यक्त्व, केवल-ज्ञान, केवल-दर्शन तथा सिद्धत्व-भाव रहता है (अन्यत्र केवल सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः)। कर्मबन्धन से छूटते ही जीव अपनी स्वाभाविक गति के अनुसार ऊर्ध्वगमन करते हुए एक समय में ही सीधे लोक के अन्त में

सिद्ध शिला पर पहुँच कर स्थित हो जाता है ।[9] अन्य प्रकार से कहा गया है कि मुक्त जीव ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित हैं, अनन्त-सुख रूपी अमृत का अनुभव करने वाले, द्रव्य-कर्म, भाव-कर्म और नो-कर्म रूपी मल से रहित हैं, नित्य हैं, केवल-ज्ञान, केवल-दर्शन, क्षायिक-सम्यक्त्व, अनन्तवीर्य, अव्याबाध, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व तथा अवगाहना रूपी आठ गुणों से युक्त हैं, कृतकृत्य हैं, और लोक के शिखर पर स्थित हैं ।[10]

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती ने मोक्ष के सम्बन्ध में सभी एकान्तवादियों के मतों को दूषित बताया है ।[11] जैन दर्शन के अनुसार कोई जीव सदा से सिद्ध नहीं होता, वरन् आठों कर्मों को नष्ट करके ही सिद्धत्व की प्राप्ति होती है, और काललब्धि आने पर ही जीव सम्पूर्ण कर्मों को क्षय कर सिद्धत्व को प्राप्त कर सकता है । मुक्त जीव अनन्त-सुख का भोग करने वाले हैं, अत: यदि आत्मा को संसार अवस्था में दु:ख और मोक्ष होने पर अनन्त-सुख की प्राप्ति न हो तो वह दु:ख से छूटने का उपाय और ज्ञान प्राप्ति भी क्यों करेगा । मुक्त जीव मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि भाव-कर्मों से रहित होता है, तथा वह संसार में लौट कर नहीं आ सकता क्योंकि बिना भावकर्म के द्रव्यकर्म का ग्रहण नहीं हो सकता । चित्त की रागादि अवस्था संसार है और रागादि रहितता मोक्ष है, अत: समस्त कर्मों के क्षय से होने वाला स्वरूप लाभ ही मोक्ष है ।[12] आत्मा के अभाव या चैतन्य के उच्छेद को मोक्ष नहीं कहा जा सकता, जिस प्रकार कि रोग की निवृत्ति का नाम आरोग्य है न कि रोगी की निवृत्ति ।

कर्मों के नाश करने का अर्थ भी इतना ही है कि कर्मपुद्गल जीव से पृथक हो जाते हैं, उनका अत्यन्त विनाश नहीं होता । किसी भी सत् का अत्यन्त विनाश न कभी हुआ है, न होगा ।[13] जो कर्म-पुद्गल किसी आत्मा के साथ सम्बद्ध होने के कारण कर्मत्वपर्याय को धारण किये हुए थे, मोक्ष होने पर उनकी कर्मत्वपर्याय नष्ट हो जाती है । जिस प्रकार आत्मा कर्मबन्धन से छूट कर शुद्ध सिद्ध हो

जाता है, उसी तरह कर्मपुद्गल भी अपनी कर्मत्वपर्याय से मुक्त हो जाते हैं। सिद्ध अवस्था में भी सिद्ध आत्माओं के साथ पुद्गलों का संयोग सम्बन्ध होता रहता है, पर बन्ध के कारणों का अभाव होने के कारण उन पुद्गलों की कर्मत्व पर्याय नहीं होती। अब दोनों द्रव्य अपने निज स्वरूप में बने रहते हैं। न तो आत्मा दीपक की तरह बुझ जाता है और न कर्मपुद्गलों का ही समूल नाश होता है, वरन् दोनों की पर्याय बदल जाती हैं।[14]

मुक्त जीवों के इन्द्रिय जनित बुद्धि का अभाव है, किन्तु केवल-बुद्धि (केवल-ज्ञान) का अभाव नहीं है; इन्द्रिय जनित सुख का अभाव है, किन्तु अतीन्द्रिय सुख की पूर्णता है; दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, अधर्म तथा व्यवहार धर्म का भी अभाव है, किन्तु स्वभावरूप धर्म का सद्भाव है; पर द्रव्य रूप संस्कार नहीं है, किन्तु स्वभाव रूप संस्कार है।[15] अतः कर्म के क्षयोपशम से होने वाले क्षायोपशमिक ज्ञान तथा कर्मजन्य सुख दुःखादि का विनाश तो मोक्ष अवस्था में मान्य है, पर उसके निज चैतन्य का विनाश स्वरूपोच्छेदक होने से कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता।[16] आचार्य कुन्दकुन्द के अनुसार भी मोक्ष में जीव के स्वाभाविक गुणों का अभाव नहीं होता, अपितु स्वाभाविक गुण पूर्ण शुद्ध रूप से विकसित होकर अनन्तकाल तक विद्यमान रहते हैं।[17]

मुक्त जीव कृतकृत्य हो जाते हैं, उन्हें कुछ करना शेष नहीं रहता, अतः न तो वे संसार में लौट कर आते हैं, न संसार का सृजन और संहार करते हैं। जीव का निज घर सिद्ध शिला है जो लोक के अग्रभाग में है, अतः वह वहीं जाकर स्थिर हो जाता है। जीव परमात्मा का अंश नहीं वरन् अनन्तानन्त जीवों का स्वतन्त्र अस्तित्व है, अनन्तानन्त जीव कर्म-कलंक से मुक्त हो चुके हैं और अनन्तानन्त भविष्य में मुक्त होंगे, उन सबका स्वतन्त्र अस्तित्व है; और यद्यपि सिद्ध शिला पर वे एक क्षेत्रावगाह होकर रहते हैं, किन्तु उनका अपना अस्तित्व समाप्त नहीं होता।[18] एकान्त रूप से आनन्दरूपता मान्य नहीं है।[19] सम्पूर्ण कर्मों से छूट जाने पर मुक्त

जीव शरीर धारण नहीं करते और शरीर के अभाव में उनके आत्म-प्रदेशों में संकोच विस्तार नहीं होता, अत: उनके आत्मप्रदेश अन्तिम शरीर के आकार प्रमाण होते हैं।[20] मुक्त जीव अनन्तकाल तक मोक्ष में रहते हैं, उनके स्वाभाविक गुण भी कभी नष्ट नहीं होते, इसलिये उन्हें नित्य कहा है, किन्तु 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' और 'सद्-द्रव्यलक्षणम्' के अनुसार स्वाभाविक परिणमन उनमें होता है, वैभाविक परिणमन नहीं होता।[21]

लेश्याओं का सम्बन्ध कषाय और योग से है, कषाय और योग का सर्वथा अभाव होने से सिद्धों के कोई लेश्या नहीं होती।[22] जन्म, जरा, रोग, मरण, शोक, दु:ख, भय आदि दु:ख के कारणों से वे मुक्त हो जाते हैं।[23] मुक्त जीवों के शरीर के अभाव में पांच इन्द्रिय, तीन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास आदि दस द्रव्यप्राण नहीं होते हैं, अत: उनका सुख इन्द्रिय जनित नहीं होता।[24] इन्द्रिय व्यापार से रहित होने के कारण उनका केवलज्ञान भी अतीन्द्रिय होता है, जिसके द्वारा वे क्रम से कुछ ही पदार्थों को न जान कर तीन काल और तीन लोक के समस्त पदार्थों को युगपत् जानते हैं। जैसे सूर्य अपने विषयगोचर समस्त पदार्थों को एक साथ प्रकाशित करता है, वैसे ही मुक्त जीवों का केवलज्ञान सब पदार्थों को एक साथ प्रकाशित करता है।[25] एक बार मोक्ष प्राप्त हो जाने के बाद जीव में पुन: कभी कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। अत: वह कभी भी किसी कारण से संसार में लौट कर नहीं आता।[26]

जैसे खान से निकले हुए स्वर्ण में किट्टकालिमादि दोष होते हैं किन्तु सोलह ताव से तपाने पर वे दोष पूर्णत: दूर हो जाते हैं और वह स्वर्ण शुद्ध बन जाता है, उसी प्रकार अनादिकाल से कर्मों से बंधा हुआ जीव बंध के हेतुओं के अभाव तथा निर्जरा के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों को क्षय कर निर्मल निरंजन हो जाता है।[27] जीव तथा कर्म का सम्बन्ध अनादि होने पर भी वह कर्मों से सर्वथा छूट सकता है जैसे बीज और अंकुर की सन्तान अनादि होने पर भी अग्नि से अन्तिम बीज को जला देने पर उससे अंकुर उत्पन्न नहीं होते, उसी

प्रकार ध्यानाग्नि के द्वारा मिथ्यात्व आदि कर्मबन्ध के कारणों को भस्म कर देने पर पुनः भवांकुर का उत्पाद नहीं हो सकता।[28] ज्ञानावरणादि आठों कर्मों के कारण ही जीव के स्वाभाविक गुण ढके रहते हैं, और इन कर्मों से मुक्त होने पर उसके वे गुण प्रकट हो जाते हैं,[29] उसी प्रकार से जिस प्रकार कि किसी भी वस्तु पर जब तक आवरण पड़ा रहता है, वह अव्यक्त या अस्पष्ट रहती है परन्तु आवरण के हटते ही वह वस्तु स्पष्ट दिखाई देने लगती है।

संसार में चार अर्थों में सुख शब्द का प्रयोग किया जाता है—विषय, वेदना का अभाव, विपाक और मोक्ष। अग्नि, वायु आदि से प्राप्त होने वाला सुख विषय-सुख है, दुःख का अभाव होने पर प्राप्त होने वाला सुख वेदना के अभाव का सूचक है, पुण्य कर्म के उदय से इन्द्रियों के इष्ट पदार्थों से प्राप्त होने वोला सुख विपाक जन्य सुख है और कर्मजन्य क्लेश से छुटकारा मिलने से प्राप्त होने वाला सुख मोक्ष है। मोक्ष सुख उत्कृष्ट है, अनुपम है, संसार के अन्य किसी सुख से उसकी उपमा नहीं दी जा सकती।[30] कर्मों का क्षय होते ही जीव की एक ही क्षण में एक साथ तीन अवस्थाएं होती हैं—शरीर का वियोग, सिद्ध्यमान गति तथा लोकान्त की प्राप्ति; जीव की ये तीनों अवस्थाएं एक साथ और एक ही समय में होती हैं।[31]

कर्म और आश्रव से रहित जीव की ऊर्ध्वगति का कारण है—पूर्वप्रयोग, असंगता, बन्धच्छेद तथा जीव का ऊर्ध्वगमन स्वभाव।[32] जिस प्रकार कुम्हार का चक्र उसके हाथ, दण्ड आदि के सम्मिलित प्रयत्न से भ्रमण किया करता है और कुम्हार के हाथ हटा लेने पर भी चक्र पूर्व प्रयोग के कारण संस्कारक्षय तक बराबर घूमता रहता है, उसी तरह संसारी आत्मा अपवर्ग प्राप्ति के लिए अनेक बार प्रयत्न करता है और कर्मों से छूट जाने पर प्रयत्न के अभाव में भी पूर्व प्रयुक्त संस्कार के कारण मुक्तात्मा ऊर्ध्वगमन करता है। जैसे मिट्टी के लेप से वजनदार तूंवडी पानी में डूब जाती है पर ज्यों ही मिट्टी का लेप धुल जाता है त्यों ही वह ऊपर आ जाती है, उसी प्रकार कर्मभार से परवश आत्मा संसार में भटक रहा था और जैसे ही वह कर्म-

बन्धन से मुक्त होता है, ऊर्ध्वगमन करता है। जैसे ऊपर के छिलके के हटते ही एरण्ड का बीज छिटक कर ऊपर को जाता है, उसी प्रकार गति आदि नाम कर्म के बन्धनों से मुक्त जीव की स्वाभाविक ऊर्ध्वगति होती है। और जैसे तिरछी रहने वाली वायु के अभाव में दीपशिखा स्वभाव से ऊपर को जलती है, उसी प्रकार मुक्तात्मा भी नाना गतिविकार के कारण कर्म के हटते ही ऊर्ध्वगति स्वभाव के कारण ऊपर ही जाता है।[33] आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती ने 'विस्ससोड्ढगई'[34] के द्वारा तथा आचार्य अमृतचन्द्रसूरि ने 'ऊर्ध्वगौरवधर्माणो जीवः'[35] के द्वारा जीव को ऊर्ध्वगमन स्वभाव वाला बताया है।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल आदि छः द्रव्य लोकाकाश में ही पाये जाते हैं, अलोकाकाश में नहीं। धर्म द्रव्य ही जीव और पुद्गल की गति में सहायता करता है। धर्मद्रव्य का अभाव होने से लोकान्त से आगे मुक्त जीव की गति नहीं होती।[36] जिस प्रकार जल में मिट्टी के भार से डूबी हुई तूम्बी मिट्टी के हट जाने पर जल के ऊपर के तल भाग तक ही गमन करती है, ऊपर जाने के निमित्त कारण जल का अभाव होने के कारण वह उससे ऊपर नहीं जा सकती, उसी प्रकार मुक्त जीव भी लोक के ऊपर धर्मद्रव्य का अभाव होने के कारण लोक के अन्त में जाकर ठहर जाता है। मुक्त जीव को लोक के अन्त में अनन्तकाल तक ठहरने में अधर्म द्रव्य सहायता करता है।[37] जीव अमूर्तिक है, स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण के भार से मुक्त है जबकि पुद्गल मूर्तिक है, स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण के भार से युक्त है, अतः जीव की स्वाभाविक गति ऊर्ध्वगति है और पुद्गल की स्वाभाविक गति नीचे की ओर है। जीव संसारावस्था में कर्मभार के कारण ऊर्ध्व, अधः तथा तिर्यक् गमन करता है, वह उसकी स्वाभाविक गति नहीं है।[38]

प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन के गति सम्बन्धी प्रथम नियम के अनुसार—'एक द्रव्य जो विराम अवस्था में है, तब तक विराम अवस्था में ही रहेगा तथा एक द्रव्य जो सीधी रेखा में गतिशील है,

वह गतिशील ही रहेगा, जब तक उस द्रव्य की अवस्था में परिवर्तन के लिये कोई बांह्य बल न लगाया जाय। एक द्रव्य तब तक स्थिर रहता हैं, जब तक उसे गतिशील कराने में बाह्य शक्ति का प्रयोग नहीं होता। उदाहरण के लिए, एक गेंद को ऊपर फेंकने पर कुछ समय के बाद वह नीचे गिर जाती है, क्योकि गेंद को ऊपर फेंकने के लिये जो शक्ति प्रयोग की गयी थी, उससे वह ऊपर उठी थी, किन्तु पृथ्वी की केन्द्राकर्षण शक्ति के कारण कुछ समय के बाद उसकी ऊर्ध्वगति में परिवर्तन होकर अधोगति हो गयी। इसी प्रकार जीव की स्वाभाविक गति ऊर्ध्वगति होने पर भी विरोधात्मक कर्म-शक्ति से प्रेरित होकर कर्ममुक्त संसारी जीव चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करता है, किन्तु जब वह कर्मबन्धन से सर्वथा मुक्त हो जाता है तो स्वाभाविक गति से ऊर्ध्वगमन करता है।

आठो कर्मों कीं सेना पर विजय प्राप्त करने के लिए जीव सर्वप्रथम सेनापति के समान प्रबल अजेय मोहनीय कर्म पर प्रहार करता है। सेनापति के पराजित होते ही युद्ध में सेना स्वयं आत्म-समर्पण कर देती है। इसी प्रकार मोहनीय कर्म के क्षय होते ही ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी और अन्तराय कर्म का भी क्षय हो जाता है। इन चार घातिया कर्मों के नष्ट होने से जीव को अनन्तचतुष्टय (अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य) की प्राप्ति हो जाती है। वह अनन्त बल का धारी हो जाता है, उसका औदा-रिक शरीर परमौदारिक हो जाता है और वह शक्तिहीन शेष बची हुई वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्म की सेना को परास्त कर शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।[39]

उक्त विवेचन से भासित होता है कि जैन दर्शन में मोक्ष तत्त्व का अत्यन्त वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है।

सन्दर्भ :

१. धम्महं अत्थहं कामहं वि एयहं सयलहं मोक्खु।
उत्तम पभणहिं णाणि जिय, अण्णें जेण ण सोक्खु॥
—जोइन्दु: परमात्मप्रकाश, अध्याय १, दोहा ३

२. प्रभाचन्द्र: **प्रमेयकमलमार्तण्ड**, (सं. पं. महेन्द्र कुमार शास्त्री, द्वि. सं.), पृष्ठ ३०७
३. डा० महेन्द्र कुमार जैन: **जैन दर्शन**, पृ० १८०
४. आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च मोक्षेऽभिव्यज्यते । —**प्रमेयकमलमार्तण्ड**, पृष्ठ ३१०
५. न तस्य प्राणा: उत्कामन्ति अत्रैव समवलीयंते । —**सदानन्दयोगी: वेदान्तसार**, सूत्र १२६
६. **प्रमेयकमलमार्तण्ड**, पृष्ठ ३१६
७. तस्मान्न बद्धयते नापि मुच्यते, नापि संसरति कश्चित् ।
संसरति, बद्धयते, मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः ।। —**ईश्वरचन्द्र : सांख्यकारिका** ६२
८. नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती : **गोम्मटसार, जीवकांड**, गाथा ६६ (पं० खूब चन्द्र जैन की हिन्दी टीका)
९. आचार्य उमास्वामी : **तत्वार्थ सूत्र**, अध्याय १०, सूत्र २-५, अ० २ सूत्र २७, २६
१०. अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणि वासिणो सिद्धा । —**गोम्मटसार, जीवकांड**, गाथा ६८
११. सदसिव संखो मक्कडि बुद्धो णेयाइयो य वेसेसी ।।
ईसरमंडलदंसणविदूसणट्ठं कयं एदं । —**गोम्मटसार, जीवकांड**, गाथा ६६
१२. आत्मलाभो विदुर्मोक्षं जीवस्यान्तर्मलक्षयात् ।
नाभावो नाप्यचैतन्यं न चैतन्यमनर्थकम् ।। —अकलंकदेव: **सिद्धि-विनिश्चय**, पृष्ठ ३८४
१३. जीवाद्विश्लेषणं भेद: सतो नात्यन्तसंक्षय: —**आप्तपरीक्षा**, श्लोक ११५;
भावस्य णत्थि णासो —आचार्य कुन्दकुन्द : **पंचास्तिकाय**, गाथा १५
१४. डा० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य : **तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा**, प्रथम भाग, पृ० ३७८
१५. **परमात्मप्रकाश**, अध्याय २, दोहा ६ की हिन्दी टीका; विद्यानन्द : **अष्टसहस्री**, पृष्ठ ६८-६६ भी दृष्टव्य
१६. डा० महेन्द्र कुमार जैन : **जैन दर्शन**, पृष्ठ २३३-२३४
१७. जेसिं जीवसहाओ णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स ।
ते होंतिभिण्णदेहा, सिद्धा वचिगोयरमतीदा । —आचार्य कुन्दकुन्द : **पंचास्तिकाय**, ३५
१८. **परमात्मप्रकाश**, अध्याय १, दोहा १-२
१९. 'आनन्दरूपता तु मोक्षस्याभीष्टैव, एकान्तरूपता तु प्रतिषिध्यते' —
प्रमेयकमलमार्तण्ड, पृष्ठ ३२०
२०. जह कंचणमग्गिगयं मुंचइ किट्टेण कालियाए य ।
तह कायबंधमुक्का अकाइया झाणजोगेण ।। —**गोम्मटसार, जीवकांड**, गाथा २०३

२१. णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा ।
लोयग्गट्ठिदा णिच्चा उप्पदि वयेहिं संजुत्ता ।। —नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती : द्रव्यसंग्रह, गाथा १४

२२. नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती:गोम्मटसार, जीवकांड, गाथा ५५६

२३. जन्मजरामय मरणैं, शोकैर्दु:खै: भंयेश्च परिमुक्तम् ।
निर्वाण शुद्धसुखं नि:श्रेयसमिष्यते नित्यम् ।। —स्वामी समन्तभद्र : रत्नकरण्डश्रावकाचार, १३०

२४. दसविद्यपाणाभावो कम्माभावेण होइ अच्चन्तम् ।
अच्चन्तिगोय सुहदु:खाभावो विगददेहस्स ।। —आचार्य शिवार्य: भगवती आराधना, २१३०

२५. भावे सग विसयत्थे सूरो जुगवं जहा पयासेई ।
सव्वंवितथा जुगवं केवलणाणं पयासेदि । - वही, २१३६

२६. काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या ।
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसम्भ्रान्तिकरणपटु: ।। —रत्नकरण्ड-श्रावकाचार, १३३

२७. दोषावरणयोर्हानिर्निश्शेषाऽस्त्यति शायनात् ।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षय: । —स्वामी समन्तभद्र: आप्त-मीमांसा, ४

२८. दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नांकुर: ।
कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवांकुर: । —आचार्य कनकनन्दी: स्वतन्त्रता के सूत्र, पृष्ठ ६३३

२९. ज्ञानावरणहानात्ते केवल ज्ञानशालिन: ।
दर्शनावरणच्छेदादुद्यत्केवलदर्शिन: ।
वेदनीय समुच्छेदा दव्याबाधत्वमाश्रिता: ।
मोहनीय समुच्छेदात्सम्यक्त्वमचलं श्रिता: ।
आयु: कर्मसमुच्छेदादवगाहनशालिन: ।
नामकर्मसमुच्छेदात्परमं सौक्ष्यभाश्रिता: ।।
गोत्रकर्म समुच्छेदात्सदाऽगौरवलाघवा: ।
अन्तराय समुच्छेदादनन्तवीर्यमाश्रिता: ।। —अमृतचन्द्र सूरि: तत्त्वार्थ सार, ३७, ३८, ३९, ४०

३०. लोके चतुर्ष्विहार्थेषु सुखशब्द: प्रयुज्यते ।
विषये वेदनाभावे विपाके मोक्ष एव च ।।
सुखो वह्नि: सुखो वायुर्विषयेस्विह कथ्यते ।
दु:खाभावे च पुरुष: सुखितोऽस्मीति भाषते ।।
पुण्यकर्मविपाकाच्च सुखमिष्टेन्द्रियार्थजम् ।
कर्मक्लेशविमोक्षाच्च मोक्षे सुखमनुत्त मम् ।।
लोके तत्सदृशोऽन्यन्न कृत्स्नेऽप्यन्योन विद्यते ।
उपमीयेत तद्येन तस्मान्निरुपम् स्मृतम् ।। —तत्त्वार्थसार

३१. पं० खूबचन्द्र जैन: तत्वार्थाधिगमभाष्य, सूत्र ५ की व्याख्या

३२. पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ।
आविद्धकुलालचक्रवद् व्यपगतलेपालाम्बुवदेरन्डबीज वदग्निशिखावच्च ।
—तत्त्वार्थ सूत्र, अ० १०, सू० ६-७

३३. डा० महेन्द्र कुमार जैन: तत्वार्थ वार्तिक, पृष्ठ ८०४

३४. द्रव्यसंग्रह, गाथा २

३५. तत्वार्थसार, ३२

३६. धर्मास्तिकायाभावात । —तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय १०, सूत्र ८

३७. कालमणंतमधम्मोपग्गहिदो ठादि गयणमोगाढ़ो ।
—भगवती अराधना, २१३३

३८. तत्वार्थ सार, ३४

३९. मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ।
बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्याम् कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः । —तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय १०, सूत्र १-२

★

(पृष्ठ २३० का शेष)

reasonable to accept the first hypothesis that **the work was composed some time before the division of the Jaina community occurred.**" दिगम्बर-श्वेताम्वर संघभेद दिगम्बर परम्परा के अनुसार विक्रम के १३६ वर्ष पश्चात (७९ ई०) तथा श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार वीर निर्वाण के ६०९ वर्ष उपरान्त (८२ ई०) हुआ था। इस प्रकार डा० कुलकर्णी ने विमलार्य की कृति को संघभेद के पूर्व के होने की विचारणा को अधिक तर्क सम्मत बता कर उसका रचनाकाल प्रथम शती ईस्वी के तृतीय पाद तक होने की बात स्वीकार कर ली है। वैसे भी ग्रन्थकर्ता द्वारा ग्रन्थ में उल्लिखित रचनाकाल वीर निर्वाण के ५३० वर्ष बाद (ईस्वी सन् ३) अमान्य करने का कोई कारण नहीं है।

पउमचरियं की सर्वप्राचीन उपलब्ध ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि विक्रम सम्वत् ११९८ (११४१ ई०) की बताई जाती है जो जयसिंहदेव के राज्यकाल में भड़ूच में लिखी गई थी। दिगम्बराचार्य रविषेण के संस्कृत **पद्मपुराण** (६७६ ई०) में विमलार्य का कोई उल्लेख किये बिना, उनकी उक्त कृति में वर्णित रामकथा को ही प्रायः अपनाया गया बताया जाता है। स्वयंभू (८वीं शती ई०) के अपभ्रंश **पउमचरिउ** का आधार भी विमलार्य का **पउमचरियं** माना गया है। शीलाचार्य (८६८ ई०) के **चौपन्नमहापुरिसचरिय**, भद्रेश्वर

(११वीं शती ई०) की **कहावली**, हेमचन्द्र (१२वीं शती ई०) के **योगशास्त्रस्वोपज्ञ-वृत्ति** तथा **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित**, धनेश्वर (१४वीं शती ई०) के **शत्रुञ्जयमाहात्म्य**, देवविजयगणि (१५९६ ई०) के **रामचरित** तथा मेघविजय (१७वीं शती ई०) के **लघु-त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** में वर्णित रामकथा को विमलार्य की कृति पर आधारित बताया जाता है जो कि उक्त कृति की लोकप्रियता की द्योतक है। तथापि गुणभद्राचार्य (९वीं शती ई०) द्वारा संस्कृत में रचित **उत्तरपुराण** में वर्णित रामकथा **पउमचरियं** की रामकथा से काफी भिन्न है और गुणभद्र की कथा को ही पुष्पदन्त (९६५ ई०) ने अपने **महापुराण** में और कृष्णदास (१५२८ ई०) ने अपने **पुण्य-चन्द्रोदयपुराण** में अपनाया है। संघदासगणि की **वसुदेवहिण्डी** (६ठी शती ई०) और हरिषेण के **वृहत्कथाकोश** (९३१-३२ ई०) में राम-कथा का जो रूप दृष्टिगत होता है वह वाल्मीकि की **रामायण** से काफी साम्य रखता है।

इस प्रकार जैन रामकथा के ३ रूप प्राप्त होते हैं—विमलसूरि, गुणभद्र और संघदास-हरिषेण द्वारा निबद्ध, जिनमें सर्वप्राचीन विमल का है।

कुवलयमाला के निम्नलिखित पद्य—

बहुयण सहस्स दइयं हरिवंसुप्पत्ति कारयं पढमं।
वंदामि वंदियं पियु हरिवंस चेव **विमल** पयं॥ ३-२९॥

के आधार से विमलार्य द्वारा **हरिवंस** की रचना किये जाने का अनुमान समीचीन नहीं है क्योंकि उसमें स्पष्टतः वैदिक कवि के **हरिवंश** का उल्लेख हुआ है। विमल रचित कोई 'हरिवंस' उपलब्ध भी नहीं है।

परवर्ती रचनाकारों को अपनी कृति से प्रभावित करने वाले, भारतीय एवं पाश्चात्य प्राच्यविदों एवं प्राकृत-साहित्य-रसिकों का आकर्षण केन्द्र बनने वाले, भारतीय जनमानस में पूज्य महापुरुष राम के कथानक को जैन धर्म, परम्परा और सिद्धान्तों के अनुकूल ढाल कर प्रस्तुत करने वाले विमलार्य, भारती के गौरव हैं। उनका **पउमचरियं** प्राकृत भाषा और उसके साहित्य के विकास एवं इतिहास को जानने की दृष्टि से, भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से, प्राचीन भारतीय संस्कृति के ज्ञान की दृष्टि से तथा भारतीय कथा साहित्य विशेष कर रामकथा, के विकास को समझने की दृष्टि से हमारे लिये महत्वपूर्ण साधन-स्रोत है।

—रमा कान्त जैन

पश्चिमी मालवा के जैन हस्तलिखित-ग्रन्थ भण्डार

—डॉ० सुरेन्द्र कुमार आर्य

भारत के मध्य प्रदेश में स्थित मालवा भूमि इस कहावत के लिये विख्यात है कि "मालवा भूमि गहन गम्भीर, पग-पग रोटी, डग-डग नीर।" यहां जैन ग्रन्थ भी इतनी विपुल मात्रा में रचे गये कि पूरा मालवा उससे समृद्ध व सम्पन्न है। ईस्वी सन् ९५० से १३५० तक मालवा पर परमार राजवंश का वर्चस्व रहा। भोज, मुंज, उदयादित्य, नरवर्मन और अर्जुनवर्मन ने जैन ग्रन्थों के लेखन, सुरक्षा व सम्वर्द्धन में विशेष योगदान किया। धारा, नलकच्छपुर (नालछा) और उज्जैन में प्रख्यात जैन कवि आशाधर ने अनेक ग्रन्थों की रचना की। धारा नगरी के राजा भोज ने उनके सम्मान में लिखा है कि आशाधर सदृश कवि उनके साम्राज्य में ऐसे ही सुशोभित हैं जैसे सूर्य।

उज्जैन के पं० पन्नालाल जी जति के हस्तलिखित भण्डार में और विश्वविद्यालय के सिंधिया प्राच्य-शोध-संस्थान में हजारों की संख्या में जैन ग्रन्थ सुरक्षित हैं।

खाराकुआ जैन मन्दिर में स्थित 'चन्द्रसागर सूरि ज्ञान भण्डार' पुस्तकालय में ४८९० ग्रन्थ जैन धर्म, दर्शन, साहित्य, काव्य व कर्मकाण्ड से सम्बन्धित हैं। कुछ में चित्र भी हैं, यथा—देव सुन्दर गणि रचित **प्रेम विजय**; इसमें दिव्य पुरुष के दायें हाथ का अंकन है जिसकी पांच अंगुलियों पर चक्र, शंख, आयु रेखा, हल, कमल, बाण, धनुष, ध्वज, चामर, कच्छप, श्रीवत्स, रथ, शंख और मीन का अंकन है। **दीपज्ञान कोष** एक अन्य चित्रात्मक ग्रन्थ है। प्राकृत में सम्वत् १७४८ श्रावणसुदि २ को अमरचन्द द्वारा विरचित **कालकाचार्य** नामक हस्तलिखित ग्रन्थ में आचार्य कालक, शकराज से उनकी चर्चा, अपनी बहन के अपमान से क्रोधित कालकाचार्य का शक स्थान के साहियों को आमन्त्रित करना और गर्द्धभिल्ल को अपदस्थ करना, चित्रित हैं।

रतलाम के जैन श्रावक मन्दिर में आज भी हस्तलिखित ग्रन्थ

(शेष पृष्ठ २६० पर)

धर्म का मर्म - अहिंसा

—श्री नरेन्द्र सिंह चौधरी

जग-निस्सिएहिं भूएहिं, तसनामेहिं थावरेहिं च ।
नो तेसिभारभे दंडं, मणसा वयसा कायसा चेव ।।

अर्थात्, संसार में जितने भी स्थावर (जैसे कि वनस्पति, पेड़, पौधे इत्यादि) एवं त्रस (जैसे कि इन्द्रियां धारण किये हुए) जीव हैं उन किन्हीं भी प्राणी को हम मन, वचन व कर्म से कष्ट न दें, उनकी हिंसा न करें । यह है मुख्यत: भगवान महावीर का सन्देश और धर्म का मूल मन्त्र जिसमें संसार की सभी समस्याओं का समाधान निहित है ।

ब्राह्मणीय धर्म शास्त्रों में "अहिंसा, सत्यं, अस्तेयं, शौचम्, इन्द्रिय निग्रह:" धर्म के मूल तत्त्व बताए गये हैं और यह अपेक्षा की गई है कि समाज के सभी वर्ग इनका अनुपालन करें । एक प्रकार से भगवान महावीर ने भी इन्हीं मूल्यों को प्रतिपादित किया था । धर्म के सभी अंगों का मूल तत्त्व, अथवा यों कहें कि धर्मरूपी वृक्ष का मूल तना, अहिंसा है और शेष सब अच्छी बातें उस तने से ही निकली हुई शाखाएं हैं । इसलिये महावीर का आग्रह था कि अहिंसा

(पृष्ठ २५९ का शेष)

परम्परा प्रचलित है । स्याही का निर्माण, बरु नामक पोधे से कलम को शास्त्रीय ढंग से प्राप्त करना और उसे चाकू द्वारा सुलेखन के योग्य करना आदि सब प्रक्रिया इस उपासरे में आज भी प्रचलित है । ग्रन्थ के हाशिये पर अलंकरण व वानस्पतिक चित्रण किया जाता है । प्राचीन जीर्ण-शीर्ण ग्रन्थों को नवनिर्मित पृष्ठों पर नकल कर संरक्षित किया जाता है ।

मालवा के विभिन्न शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत जैन ग्रन्थों के सूचीकरण व यथावश्यक उनकी फोटो कापी कराने का कार्य हाल ही में इन्दौर की 'कुन्दकुन्द ज्ञान पीठ' द्वारा प्रारम्भ किया गया है जो शोधार्थियों के लिये स्वागतार्ह है । ★

के बिना धर्म की बात करना बेमानी है। उनकी शिक्षा थी कि—

जावन्ति लोए पाणा तसा अदुव थावरा।
ते जाणमजाणं वान हुणे नो विघायए॥

संसार में जितने भी त्रस और स्थावर जीव हैं उनकी जाने-अनजाने हिंसा न करो और न ही प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष में उनकी हिंसा का कारण बनो, क्योंकि—

अज्झत्थं सव्वओ सव्वं दिस्स पाणे पियायए।
न हुणे पाणिणो पाणे भयवेराओ उवरए॥

सबके भीतर एक आत्मा है और हमारी ही तरह सभी को अपने प्राण प्यारे हैं। अतः—

नाइवाइज्ज किंचण।

किसी भी प्राणी की हिंसा न करो। और

आयातुले पयासु।

सभी प्राणियों के प्रति वैसा ही भाव रखो जैसा कि आप अपने प्रति रखते हो।

कहने की आवश्यकता नहीं कि यही संसार की सब उत्तम विचारधाराओं का मूल तत्त्व है। श्रीमद्भागवत गीता में आता है कि

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

लगता है यह श्लोक और जैन विचारधारा के उपरोक्त कथन एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। इसाई विचारधारा में भी कहा गया है कि "दूसरो के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा कि आप अपने साथ चाहते हो।" मुस्लिम विचारधारा में भी यही कहा गया है कि "हमसायों कों सताने वाला मोमन कहलाने का मुस्तहक नहीं"। कहने का तात्पर्य है कि धर्म का और सभी उत्तम विचारधाराओं का मूल मंत्र अहिंसा है और शेष जितनी भी अच्छी बातें हैं वह अहिंसा से ही प्रतिफलित हैं।

सत्य के बारे में भगवान महावीर ने कहा था—

पुरिसा! सच्चमेव समभिजाणाहि।
सच्चस्स आणाए से उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ॥

हे मनुष्य तू सत्य को ही सच्चा तत्त्व समझ। जो बुद्धिमान सत्य अनुसार आचरण करता है वह इस मृत्यु लोक को तैर कर पार कर जाता है।

अस्तेयं के बारे में महावीर ने कहा था—

अदत्तादाणं हरदहमरणभयकलुसतासणपर
संतिमअभेज्ज लोभमूल ....
अकित्ति करणं अणज्जं ....
साहुगरहणिज्जं पियजणमित्तजणभेद
विप्पीतिकारकं रागदोसबहुलं ।।

अर्थात्, गलत तरीके से अर्जित किया हुआ धन सभी पाप, कष्ट और भय का मूल कारण है। वह अपयश देने वाला है, विपत्ति का कारण है और सब बुराइयों की जड़ है, अतः—

सवत्थुवहिणा बुद्धा संरक्खणपरिग्गहे।
अवि अप्पणो वि देहम्मि नाअअयरंति ममाइयं ।।

बुद्धिमान लोग किसी भी सांसारिक वस्तु में अनावश्यक मोह नहीं रखते, यहां तक कि स्वयं के शरीर में भी नहीं।

एक जैनी द्वारा सामायिक पाठ में यह भावना की जाती है—

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थ्यभावं विपरीतवृत्तौ
सदा ममात्मा विदधातु देव ।।

अर्थात्, हे देव, मेरी आत्मा प्राणी मात्र के प्रति मैत्री भाव रखे, गुणियों को देखकर मुझे प्रसन्नता हो, दुखियों को देख कर मेरे मन में करुणा जगे और विपरीत वृत्तिवालों के प्रति मेरे मन में तटस्थभाव रहे। सामायिक का एक नैष्ठिक श्रावक या श्राविका के लिए वही महत्त्व है जो एक नैष्ठिक हिन्दू के लिए संध्या-वन्दन का।

दया और क्षमा का मनुष्य के जीवन में विशेष महत्त्व है। कहा गया है कि—

एषैव हि पराकाष्ठा धर्मस्योक्ता जिनाधिपैः।
दयारहितचित्तानां धर्मः स्वल्पोऽपि नेष्यते ।।

अर्थात्, दया ही धर्म की चरम सीमा है, और जिन मनुष्यों में दया भाव नहीं है उनमें धर्माचरण का होना असम्भव है। और यह भी कि—

खम्मामि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झं न केणवि ।।

अर्थात्, मैं सब जीवों से क्षमा चाहता हूं और मैं स्वयं भी सब जीवों को क्षमा करता हूं, सब जीवों के प्रति मेरा मैत्री भाव है और मेरा किसी से बैर नहीं है। तथा—

सव्वस्स जीवरासिस्स भावओ धम्मनिहिअनिअचित्तो।
सव्वे खमादइत्ता खमामि सव्वस्स अहयं पि ।।

अर्थात्, सच्चे हृदय से धर्म में आस्था रखते हुए सब जीवों से अपने सारे अपराधों के लिए मैं क्षमा मांगता हूं और यदि किसी ने मेरे प्रति भी कोई अपराध किया है तो उसे भी हृदय से क्षमा करता हूं। गीता में भी आया है-"निर्वैर: सर्वभूतेषु य: स, मामेति पाण्डव", अर्थात्, किसी भी जीव के प्रति वैरभाव न रखने वाले को ही सिद्धि प्राप्त होती है।

कहा गया है कि—

जीवदया दम सच्चं अचोरियं बंभचेरसंतोसे।
समद्दंसणणाणे तओ य सलिस्स परिवारो ।।

अर्थात्, जीवों पर दया करना, इन्द्रियों को वश में रखना, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रम्हचर्य का पालन करना, सन्तोष धारण करना और रत्नत्रय अर्थात् सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र के अनुकूल व्यवहार करना ही हर मनुष्य को वांछनीय है, क्योंकि—

सीलं तवो विसुद्धं दंसणसुद्धीय णाणसुद्धीय।
सीलं विसयाण अरी सीलं मोक्खस्स सोवाणं ।।

अर्थात्, शील ही विशुद्ध तप है, शील ही दर्शन-विशुद्धि है, शील ही ज्ञान-शुद्धि है, शील ही विषयों का शत्रु है, और शील ही मोक्ष की सीढ़ी है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जैन दर्शन में मनुष्य को अच्छे कर्म करने और स्वयं को ऊँचा उठाने के लिये प्रेरित किया गया है। गीता में भी कहा गया है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।।

अर्थात्, मनुष्य अपनी इन्द्रियों पर संयम रखते हुए अपने आप को ऊँचा उठाये, मनुष्य स्वयं ही स्वयं का मित्र है और स्वयं ही स्वयं का सबसे बड़ा शत्रु भी, और जिसने अपनी इन्द्रियों पर संयम नहीं रखा, उसका सर्वनाश सुनिश्चित है। यही बात जैन विचारधारा में निम्नवत् अभिव्यक्त है—

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झयो ।
अप्पाणमेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेह ए ।।

अर्थात्, हे मनुष्य, तू आत्मा के साथ ही युद्ध कर। बाहरी शत्रुओं के साथ किस लिये लड़ता है ? आत्मा को आत्मा के द्वारा जीतने से ही सच्चा सुख मिलता है। क्योंकि—

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुक्खाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ।।

अर्थात्, आत्मा स्वयं ही दुःख तथा सुखों को उत्पन्न तथा नाश करने वाली है। सन्मार्ग पर चलने वाली सदाचारी आत्मा मित्र रूप है, जब कि कुमार्ग पर चलने वाली दुराचारी आत्मा शत्रु।

जैन दर्शन में मनुष्य मात्र को, बिना किसी ऊँच-नीच के भेद-भाव के, सत्कर्म करते हुए, धर्मानुकुल आचरण करते हुए व संयम बरतते हुए, आत्मा के उत्थान के लिए प्रेरित किया गया है। जब मनुष्य की आत्मा इस प्रकार सन्मार्ग पर चलते हुए ऊँची उठती है, और सत्यम् शिवम् सुन्दरम् में विचरण करने लगती है, तो वह स्वयं आत्मा से महात्मा और महात्मा से परमात्मा बनने की क्षमता रखती है, और उसे किसी बाहरी अवलम्बन, आडम्बर अथवा कर्मकाण्ड की आवश्यकता नहीं होती।

ॐ अहिंसा प्रतिष्ठायाम् तत्सन्निधौ वैर त्यागः। ★

कामदेव मन्दिर—एक विमर्श

—जस्टिस एम० एल० जैन

मन्दिरों की प्रचुरता में जुड़ा एक कामदेव का मन्दिर भी! कान्ह जी स्वामी की तरह भावी तीर्थंकरों की मूर्तियां भी! कामदेव की मूर्ति-मन्दिर के बारे में प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश और अन्य दिग्गज श्री नीरज जैन ने भी कोई अंगुली उठाई हो, ऐसा नहीं लगता। शायद इसलिए कि काम को दमन करने वाले भी (मुक्ति) रमा के साथ वरण-रमण करने की बात करते ही हैं। मंगलाष्टकम् के अन्तिम नवें छन्द में पढ़िये—

ये श्रृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थ कामान्विता
लक्ष्मीराश्रयते व्यापाय रहिता निर्वाण लक्ष्मीरपि।

पञ्च-मंगल के ज्ञान-मंगल का अन्तिम छन्द देखिए—

नव परम लब्धि मंडिय सिव रमनि मनरंजनो।

गुरु जयमाला सुनिए—

जे तप सूरा संजम धीरा सिद्ध वधू अणुराईया।

अनंग की मूर्ति बना, पूजा की जाएगी कि हे कामदेव! हमें शक्ति दें कि हम भी कामदेव बनें और फिर आपको ही दमन कर व जीत कर मुक्ति (रमणि) को प्राप्त कर लें! काम-पूजाएं भी बन ही गई होंगी।

परन्तु सरयू दोशी द्वारा संकलित व प्रकाशित Homage to Shrvanbelgola के पृ० ४८ पर L. K. Shrinivasan ने लिखा है कि कदम्ब रविवर्मन (४८५-५१९ ई०) के गुडिनापुर के शिलालेख किसी काम जिनालय का जिक्र करते हैं। यह काम जिनालय बाहुबली का ही मन्दिर रहा होगा।

करीब दस साल पहले बाहुबली पर मैंने कुछ शंकाएं अपनी एक लघु पुस्तिका में लिखी थीं। सवाल था कि क्या बाहुबली की उस अवस्था की पूजा की जा सकती है जब उन्हें केवलज्ञान प्राप्त

(शेष पृष्ठ २६६ पर)

संस्मरण-समीक्षा

गिलास आधा भरा है !

—श्री कैलाश चन्द जैन

लगभग पचास के दशक में, डॉ० ज्योति प्रसाद जैन जी से, स्व० छोटे लाल जी जैन के आवास पर कलकत्ते में, प्रथम भेंट हुई थी। स्व० छोटे लाल जी का आवास, इतिहास-पुरातत्त्व एवं जैन दर्शन के जैन-अजैन विद्वानों का मिलन केन्द्र था। डा० ज्योति प्रसाद जी का व्यक्तित्त्व ऐसा नहीं था कि प्रथम दृष्टया कोई प्रभावित हो सके। मझोला छरहरा-कद, साधारण वेश-भूषा, चेहरे पर बाल सुलभ मुस्कराहट—भीड़ में एक अनाम अजनबी। लेकिन जब इतिहास और पुरातत्त्व, विशेषतया उदयगिरि-खण्डगिरि से प्राप्त खारवेल के शिलालेख सम्बन्धी चर्चा आरम्भ हुई, मैं कुछ क्षण के लिए स्तब्ध रहा गया। उनके प्रगाढ़ तल-स्पर्शी पांडित्य से ऐसा अभिभूत हुआ कि उस प्रथम साक्षात्कार के पश्चात जब भी लखनऊ जाने का सुयोग मिला मैं अपने भतीजे डा० विनय कुमार को साथ लेकर

(पृष्ठ २६५ का शेष)

होने में देर थी और उनके शरीर पर लताएं और आस-पास प्राणहारी जन्तु चल रहे थे तथा उनका मन शल्य रहित नहीं हो पाया था। केवलज्ञान से पूर्व के स्वरूप की पूजा केवल पार्श्वनाथ की ही होती है परन्तु तीर्थंकर होने के कारण यह एक अपवाद है। बाहुबली की पूजा तो अब उनको ऋषभदेव व भरत के समकक्ष रखी जाकर की जाने लगी है।

कुछ तीर्थंकर व बाहुबली कामदेव भी हैं। हो सकता है इन तीर्थंकरों और बाहुबली की प्रतिमाएं ही इस मन्दिर में प्रतिष्ठित रही हों और मन्दिर का नाम काम जिनालय रख दिया गया हो। थोड़ी तफ़तीश की जरूरत है।

[**शोधादर्श**-३८ के पृ० १९७-२०० पर 'कामदेव मन्दिर' पर श्री अजित प्रसाद जैन की टिप्पणी और **शोधादर्श**-८ के पृ० २५-२७ पर 'बाहुबलि की पूजनीयता' पर हमारी टिप्पणी, भी इस सन्दर्भ में अवलोकनीय है।—शशि कान्त]

ज्योति-निकुंज, डाक्टर साहब से मिलने, नहीं-नहीं, उनके दर्शन करने अवश्य जा पहुँचता। डाक्टर साहब ने सदैव सहज आत्मीयता से मुझे उपकृत किया और मेरी शंकाओं का समाधान किया। मैंने चि० विनय को प्रेरित किया कि वे ऐसी महान विभूति का लाभ लें और उन्होंने डाक्टर साहब की शास्त्र सभा में नियमित रूप से जाना आरम्भ किया और उपकृत हुए। तब से ज्योति-निकुंज मेरे लिए मात्र डाक्टर साहब का आवास ही नहीं रह गया वरन् उनके जीवन काल में तिमिर-तिरोहित-प्रकाश-पुंज और पश्चात् सिद्ध-पीठ!

कुछ समय पहले सिद्ध-पीठ की यात्रा के अवसर पर श्री शशि कान्त जी से विचार-विमर्श चल रहा था कि श्री रमा कान्त जी ने पानी के गिलास से मेरा स्वागत किया। गिलास को देख कर कुछ अटपटा-सा लगा क्योंकि गिलास आधा खाली था, जब कि यहीं रमा कान्त जी डाक्टर ज्योति प्रसाद जी के सामने पूरा लबालब भरा गिलास देते थे। जून की उस भीषण तप्त दोपहर को यह आधा खाली गिलास! मैं अपना असमंजस्य प्रकट करने ही वाला था कि सौजन्यवश रुक गया। ऐसा नहीं कि लखनऊ में पानी का कोई दुष्काल हो, इंगित मात्र से भरपूर मिल जाता। लेकिन फिर भी यह यक्ष-प्रश्न घुमड़ रहा था कि गिलास आधा खाली क्यों?

अस्तु। पहला घूंट पिया। फिर दूसरे घूंट में अन्तराल आया जो पश्चात बढ़ता ही गया। और इसकी परिणति यह हुई कि पूरा गिलास खाली नहीं कर सका क्योंकि उस पानी में कुछ ऐसी कीमिया थी कि पहले दो-तीन घूंटों में ही प्यास तिरोहित हो गई और पश्चात के घूंट शारीरिक नहीं मानसिक तृषा तृप्ति के लिए, पीने को बाध्य होना पड़ा। सर्वप्रथम प्रश्न यह उठा कि मुझे गिलास आधा खाली क्यों दिखाई दिया, आधा भरा क्यों नहीं? फिर तो ऐसे जटिल भारी भरकम विषय—मानवता का रहस्य, सुख, सत्य, अनेकान्त, मुक्ति, अपरिग्रह आदि इतने सरल सहज भी हो सकते हैं, अपने पांडित्य का अहंकार स्वीकार करने को बाधित करता रहा परन्तु अन्ततः असफल रहा। तब कबीर का सीधा सरल दोहा "पढ़-पढ़ पोथी जग मुआ······" मेरी भर्त्सना करने लगा। और अन्त में हुआ यह कि उस आधे खाली, नहीं-नहीं, आधे भरे गिलास को पूरा पी न सका, और शेष बच गया वह चुल्लू भर था।

और जग जाहिर है कि चुल्लू भर पानी में क्या करना होता है?

[सन्दर्भ: ११ जून, १९९९, को प्रकाशित श्री रमा कान्त जैन की कृति **गिलास आधा भरा है**।]

राष्ट्र की अस्मिता संकट में

—डा० शशि कान्त

१३वीं लोक सभा के लिए निर्वाचन का दौर समाप्त हो गया। इस निर्वाचन में केवल एक मुद्दा था—विदेशी (इटली की) अन्तोनिया-मोंनाइका माइनो उर्फ श्रीमती सोनिया गांधी की साजिश से सरकार गिरी और साजिश को फलीभूत किया एक इस्लामी बन्दे सैयद सैफुद्दीन सोज़ के विश्वासघात ने, जिसकी प्रेरणा सोज़ को लन्दन में अस्पताल में लेटे राजा जयचन्द के वंशधर श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने दी—इस षड्यन्त्र और देशद्रोह के प्रति जनमत को जागृत किया जाय और जनमत संग्रह द्वारा राष्ट्र की अस्मिता की रक्षा के लिए समुचित एवं सुदृढ़ व्यवस्था दी जाये ताकि भविष्य में इस प्रकार के षड्यन्त्र और भितरघात सम्भव न हो पावें। परन्तु हमारा बिन-बत्तीसी वाला तथा कथित-ब्रह्मचारी नेतृत्व ऐसा कुछ नहीं कर सका—वह चुनाव के दौरान इस बारे में बोलने की हिम्मत ही नहीं जुटा सका। नतीजा है कि एक महिला जो जन्म से भी, नागरिकता से भी (आज भी इटली के कानून के अनुसार इटली की नागरिक) और मानसिकता से भी विदेशी है और भारतीय सांस्कृतिक विरासत की पक्षधर नहीं है, दो निर्वाचन क्षेत्रों से—दक्षिण भारत में बिलारी से और उत्तर भारत में अमेठी से—जीत कर आ गई और हमारी संसद की माननीय सदस्य ही नहीं बन गई वरन् नेता विपक्ष भी बन गई। उसकी पूरी कोशिश भी चालू हो गई है कि वह सरकार पर भी किसी-न-किसी प्रकार कब्जा बना ले और इसमें वह सुश्री जयललिता से अधिक कारगर हो रही है क्योंकि अपनी सत्तासीनता को पुष्ट करने के लिए गृहमन्त्री माननीय लाल कृष्ण अडवानी इस बात के लिये राजी हो गये हैं कि बोफोर्स मामले से स्व० राजीव गांधी के नाम को हटाये जाने में उन्हें आपत्ति नहीं है। आश्चर्य है कि कहीं भी इस पर आक्रोश नहीं है जब कि यह उन शहीदों और जवानों के प्रति जिन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व उत्सर्ग किया,

इस देश की कृतघ्न जनता और जन-नेतृत्व द्वारा प्रदर्शित स्पष्ट अपमान और अवमानना की अभिव्यक्ति है।

शोधादर्श-३८ (जुलाई १९९९) के पृ० १७४ पर मैंने 'मैं कगार पर खड़ा' शीर्षक के अन्तर्गत अपना सन्ताप व्यक्त किया था। उसी अनुक्रम में नीचे कुछ पद्य रचनायें दी जा रही हैं।

नवम्बर १९६२ में चीन द्वारा आक्रमण पर आक्रोश में लिखित—

क्रान्ति की स्वर-लहरी

ओ शान्ति के प्रहरी,
बोल अब क्रान्ति की स्वर-लहरी।
ओ शान्ति के प्रहरी,
बोल अब क्रान्ति की स्वर-लहरी॥

भारत आक्रान्त पर पस्त नहीं,
विनयवान पर त्रस्त नहीं,
विश्वास अडिग औ ध्वस्त नहीं।

कोटि-कोटि कण्ठ बोल रहे जय-भेरी,
बोल अब क्रान्ति की स्वर-लहरी।
ओ शान्ति के प्रहरी,
बोल अब क्रान्ति की स्वर-लहरी॥

भारत है साहस की खान,
यह तो उद्यम से धनवान,
यहाँ सीमंतिनी भी अतुल धैर्यवान।

बाल-वृद्ध सब ही में लड़ने की ठहरी,
बोल अब क्रान्ति की स्वरी-लहरी।
ओ शान्ति के प्रहरी,
बोल अब क्रान्ति की स्वर-लहरी॥

भारत की जनता का प्रतिकार,
करेगा शत्रु का सत्कार,
नहीं हिमालय की चीत्कार।

मत छान और अब गहरी,
बोल अब क्रान्ति की स्वर-लहरी।
ओ शान्ति के प्रहरी,
बोल अब क्रान्ति की स्वर-लहरी॥

आपात-काल (इमरजेंसी) के दौरान गणतन्त्र दिवस १९७५ पर—

जन—मन का आक्रोश

कोटि-कोटि कण्ठ बोल रहे जय-भेरी,
गूंज रही आज क्रान्ति की स्वर-लहरी।
अस्सी कोटि कण्ठ बोल रहे जय-भेरी,
गूंज रही आज क्रान्ति की स्वर-लहरी।।

जो कोई लोकतन्त्र की मर्यादा से खेलेगा,
उसे अधिनायकतन्त्र या राजतन्त्र में मोड़ेगा।
भारत के अस्सी कोटि जन,
मिल कर उसका भण्डा फोड़ेंगे।

कोटि-कोटि कण्ठ बोल रहे जय-भेरी,
गूंज रही आज क्रान्ति की स्वर-लहरी।

मनुष्य हैं, मनुष्य का सम्मान करेंगे।
स्वार्थ-लिप्त बौनों का प्रतिकार करेंगे,
बस उदात्त स्वाभिमान का सत्कार करेंगे।

अस्सी कोटि कण्ठ बोल रहे जय-भेरी,
गूंज रही आज क्रान्ति की स्वर-लहरी।

साहित्य व्यापार नहीं है,
जो कलम-कण्ठ बेच रहा, साहित्यकार नहीं है।
हिन्दी का उद्घोष यही है,
जन-मन का आक्रोश यही है।।

कोटि-कोटि कण्ठ बोल रहे जय-भेरी,
गूंज रही आज क्रान्ति की स्वर-लहरी।

यह राष्ट्र हमारा भारत, है हम सबकी थाती,
नहीं किसी एक व्यक्ति, वंश या दल की बपौती।
अब भारत का जन-गण नादान नहीं है,
वह स्वयं भाग्य-विधाता, उसका भान सही है।

दिग-दिगन्त गूंज रहे,
सभी शान्ति के प्रहरी,
अस्सी कोटि कण्ठ बोल रहे,
आज क्रान्ति की स्वर-लहरी।

इन्दिरा-संजय दुरभि संधि के बीस-सूत्री कार्यक्रम पर—

हम कहते थे बीस सूत्री,
वह सुनते थे दीर्घ सूत्री,
जो पूछा तो भंग की तरंग में यूं बोले—
हमें लगता कुशासन भी सुखासन सा ।

मई-जुलाई १९९९ में कारगिल क्षेत्र में पाकिस्तान के प्रतिकार में हमारी सेना के अधिकारियों और सैनिकों ने जो शौर्य प्रदर्शित किया, उसमें सबसे बड़ा हेतु हमारी युवा पीढ़ी में अपने राष्ट्र की अस्मिता और देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के प्रति जागरूकता रही है । युवा पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में चि० राजीव कान्त ने जो उद्गार भेजे हैं, वे इसके द्योतक हैं । —

कारगिल के जवान

—श्री राजीव कान्त जैन

धुधली लगें दुश्मन जो सरहदी लकीरें,
कलम कर तेरे सर हद दिखा देंगे ।
हद में हम खुश, रख तू भी अंकुश,
नापाक लहु से लकीरें वरना बना देंगे ।

हमारा सच—हमारी शांति, हमारा संयम,
पर मत आंको—खून की गर्मी कम ।
माँ का हर सपूत दीवाना हो जायेगा,
शत्रु जो सीमा पार करे मारा जायेगा ।

उठी हर निगाह के हम नोंच लें नयन,
वतन की आन पर दाँव सब लगायेंगे ।
सोच सपने में सिहर जाये साया भी शत्रु का,
'वन्दे-मातरम्' गूंज में ऐसा सबक सिखायेंगे ।

वतन पे मिटने वालों पर
मत करो मातम ।
वो तो भारत माँ के लाड़ले
माँ की गोद में सोये हैं !

★

परिचर्चा

विद्वत् परिषद के चुनाव और विभाजन

—श्री अजित प्रसाद जैन

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के अक्तूबर-नवम्बर १९९८ में हुए चुनाव और विभाजन पर **शोधादर्श**-३७ के पृ० १०१-०४ पर व्यक्त विमर्श के सन्दर्भ से डा० रमेश चन्द जैन ने अवगत कराया है कि—

"१. तिजारा अधिवेशन में जो विद्वान् उपस्थित हुए थे, लगभग उतने ही विद्वान् डॉ० राजाराम जी द्वारा दिल्ली में बुलाई गई बैठक में उपस्थित थे। अन्तर केवल इतना है कि दिल्ली परिषद् में उपस्थित बहुत से विद्वान् विद्वत्परिषद् के सदस्य ही नहीं थे। उसी दिन उन्हें सदस्यता से विभूषित कर दिया हो, यह बात दूसरी है; अतः यह कहना कि डॉ० राजाराम जी को काफी सदस्यों का समर्थन प्राप्त है, उचित नहीं है। उनके यहाँ उपस्थित विद्वानों की सूची **समन्वय वाणी**, वर्ष १८, अंक २३, में प्रकाशित है, जिसमें ५९ नाम लिखे गए हैं।

२. डॉ० राजाराम द्वारा मत पत्रों की हेराफेरी से निर्वाचित परिणाम कितना प्रभावित हुआ, इसकी अपेक्षा यह अधिक चिन्तनीय बात है कि हेराफेरी क्यों की गई ? आप मुजफ्फरनगर और खतौली पत्र डाल कर डॉ० जयकुमार जैन और डॉ० कपूरचन्द्र जैन से जानकारी प्राप्त करने की कृपा करें, वहाँ हेराफेरी डॉ० राजाराम जी ने की या नहीं ?

३. उपर्युक्त हेराफेरी होने पर भी कुछ विद्वानों ने यह प्रयास किया था कि आपसी बातचीत से मामला सुलझ जाए, अतः वे तिजारा बैठक से पूर्व डॉ० राजाराम जी से मिलने दिल्ली गये थे और प्रयास किया था कि डॉ० राजाराम जी की ज्ञानगरिमा को देखते हुए उन्हें अध्यक्ष मान लिया जाय, किन्तु कार्यकारिणी का गठन सबकी सहमति से हो, किन्तु राजाराम जी कार्यकारिणी में अधिकांश कांजी समर्थक विद्वान् रखना चाहते थे, जो इष्ट नहीं था।

विद्वत् परिषद की नीति रही है कि उसमें सभी विचारधारा के दिगम्बर परम्परा के विद्वान् सम्मिलित हों, उसकी यह नीति आज भी कायम है, किन्तु कोई व्यक्ति या संस्था इसे कांजी परिषद् मात्र ही बनाना चाहे तो यह समाज के हित में नहीं। कांजी पन्थी संस्थाओं में कोई भी आर्षमार्गी सदस्य नहीं, किन्तु आर्षमार्गी संस्थाओं में वे हर जगह वर्चस्व चाहते हैं, ऐसा क्यों ? वर्चस्व हेतु अवैध तरीके अपनाए जायें, क्या यह उचित है ?

४. डॉ० राजाराम जी ने जो एकता समिति गठित की है, उसने आज तक सामूहिक रूप से कोई प्रयास नहीं किया। एकता हेतु आपके समस्त प्रयासों और सुझावों का स्वागत है, किन्तु इस विषय में दोनों ओर से सार्थक पहल होनी चाहिए।"

हमने उपरोक्त स्थिति पर दूसरे पक्ष की प्रतिक्रिया जानने के उद्देश्य से इस पत्र की फोटो प्रति डा० राजा राम जी को भेजी थी। उन्होंने प्रत्येक बिन्दु पर सविस्तार उत्तर दिया है जिसका संक्षेप-सार भी हम नीचे दे रहे हैं। डा० राजाराम जी के अनुसार—

"(i) **दोनों अधिवेशनों में सदस्यों की उपस्थिति**—दि० १-११-९८ को आयोजित तिजारा अधिवेशन में उपस्थित सदस्यों की संख्या ४१ थी जबकि २९-११-९८ को दिल्ली में आयोजित अधिवेशन में सदस्यों की संख्या ५६ थी (इनमें ७-८ नए बने सदस्य भी शामिल थे जिनके आवेदन पत्र दीर्घ काल से पिछली कमेटी की निष्क्रियता के कारण विचाराधीन पड़े हुए थे)।

(ii) **तिजारा अधिवेशन की संवैधानिकता**—संविधान के नियम ६ के अनुसार साधारण सभा के अधिवेशन के लिए कार्यकारिणी द्वारा निश्चित की गई तिथि की सूचना एजेन्डा सहित सभी सदस्यों को कम से कम १५ दिन पूर्व भेजी जानी चाहिए थी, किन्तु तिजारा अधिवेशन के लिए ऐसा कोई सूचना पत्र नहीं भेजा गया था। अतः यह अधिवेशन असंवैधानिक था तथा इसकी असंवैधानिकता पूर्व मन्त्री डा० सुदर्शन लाल ने भी स्वीकार की थी। वस्तुतः वह विद्वत् परिषद् का अधिवेशन था ही नहीं, बल्कि पं०

जुगल किशोर मुख्तार के कृतित्व एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी त्रिदिवसीय सेमीनार था। दि० ३१-१०-९८ के **नवभारत टाइम्स** में अध्यक्ष पद के चुनाव परिणाम की घोषणा पढ़ कर पराजित ग्रुप में हड़कम्प मच गया और उन्होंने जल्दबाजी में सेमीनार में उपस्थित विद्वानों में ही विद्वत् परिषद का चुनाव कर कार्यकारिणी का भी गठन कर लिया।

(iii) **अध्यक्ष के चुनाव में मतपत्रों की हेराफेरी का आरोप–** मत पत्रों में किसी भी प्रकार की हेराफेरी नहीं की गई। पराजितों से हेराफेरी के प्रमाणिक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए बार-बार निवेदन किया, किन्तु कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किए गए।

(iv) **कार्यकारिणी में कान्ह जो पंथियों के बाहुल्य का आरोप–** यह आरोप भ्रमात्मक है तथा संकीर्ण एकांगी सोच का परिचायक है। विद्वत् परिषद का गठन दिगम्बर जैन विद्वानों को संगठित करने के लिए किया गया था, उसमें पन्थ भेद का प्रश्न ही नहीं था, न ही उसके संविधान में पन्थ भेद का कोई उल्लेख है। विद्वत् परिषद का तीसरा अधिवेशन तो सन् १९४७ में सोनगढ़ में कान्हजी स्वामी के सानिध्य में ही पं० कैलाश चन्द्र जी शास्त्री (वाराणसी) की अध्यक्षता में सम्पन्न किया गया था। उस समय वहां के अनेक विद्वान विद्वत् परिषद के सदस्य बने होंगे। परवर्ती अध्यक्षों के कार्यकाल में डा० हुकम चन्द्र भारिल्ल, पं० रतनचन्द्र भारिल्ल आदि भी उसके सदस्य बनते रहे। २९ नवम्बर के साधारण सभा के अधिवेशन में पराजित पक्ष के लोग आए ही नहीं यद्यपि कार्यकारिणी का चुनाव इसी में होना था।

मत भेद तो बुद्धि जीवियों में होना स्वाभाविक है, किन्तु मन भेद नहीं होना चाहिए। अध्यक्ष पद पर मेरे चुनाव के पूर्व पन्थ भेद की कोई समस्या ही नहीं थी, किन्तु पराजितों को जब विरोध करने का कोई मुद्दा नहीं मिला तो उन्होंने कान्हजी पन्थ को बीच में खड़ा कर दिया, जबकि इससे हमारे पक्ष का कोई सम्बन्ध नहीं क्योंकि वह तो पूर्वागत है।

(v) **पिछले रिकार्ड अभिलेख व बैंक एकाउन्ट**—२९-११-९८ के दिल्ली अधिवेशन में पूर्व अध्यक्ष डा० देवेन्द्र कुमार तथा पूर्व मन्त्री डा० सुदर्शन लाल ने भी भाग लिया था। डा० सुदर्शन लाल जी का वक्तव्य भी हुआ था और रिपोर्ट वाचन भी उन्होंने किया था। कार्यकारिणी ने उन्हें उपाध्यक्ष का पद भी प्रदान किया है। पूर्व कोषाध्यक्ष श्री अमरचन्द्र जी ने भी इस अधिवेशन में प्रस्तुत किये जाने के लिए पिछले आय-व्यय का विवरण भेजा था। पूर्व में वे पराजित पक्ष की विद्वत् परिषद को असंवैधानिक भी कहते रहे। बाद में उसी असंवैधानिक कार्यकारिणी को उन्होंने पिछले अभिलेख, रिकार्ड, हिसाब तथा बैंक एकाउन्ट सौंप दिए। इसके विरोध में हमने उन्हें पत्र भी लिखा जिसका उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

(vi) **एकता व समन्वय के प्रयास**—एकता-समन्वय के लिये एक सात-सदस्यीय एकता समिति का गठन किया गया था। सोचा यह गया था कि २९-११-९८ के अधिवेशन में जब सभी लोग आयेंगे तो वहीं पर सर्व सम्मति से एकता/समन्वय सम्बन्धी समस्या को सुलझा लिया जायेगा किन्तु उनमें से कोई भी नहीं आया।"

हमें इस विवाद में कुछ लेना-देना नहीं है कि विद्वत् परिषद के विभाजन के लिये कौन पक्ष कितना दोषी हैं पर इसे दिगम्बर जैन समाज का दुर्भाग्य तो मानना ही पड़ेगा कि समाज के मार्ग-दर्शक समझे जाने वाले शास्त्रज्ञ तथा अनेकान्त दर्शन के मर्मज्ञ अध्येता विद्वानों ने क्षुद्र मन-भेद के चलते अपने संगठन को ही विभाजित कर दिया। विद्वत् परिषद की विचारधारा सदैव ही उदार रही है तथा ५५ वर्ष पूर्व इसके गठन का मूल उद्देश्य ही सभी प्रगतिशील दिगम्बर जैन पंडितों-विद्वानों को एक सूत्र में पिरोकर धर्म-संस्कृति-साहित्य के संरक्षण व संवर्द्धन के कार्य में लगाना था। अन्यथा हीरक जयन्ती मना लेने वाली शास्त्रि परिषद के रहते विद्वत् परिषद के पृथक गठन की कोई सार्थकता ही नहीं थी।

फिर भी यदि दोनों विद्वत् परिषदों के कर्णधार विद्वत् जन अपने वाली परिषद की तुलनात्मक सार्थकता सिद्ध करने की दृष्टि

से ही यदि यह स्वस्थ संकल्प कर लें कि उनकी परिषद अप्रकाशित दुर्लभ प्राचीन ग्रन्थों को प्रकाश में लाने तथा धर्म, संस्कृति व श्रमणाचार में पनपती विकृतियों के विरुद्ध समाज को शिक्षित कर उनको दूर कराने का अधिकाधिक प्रयास करेगें, तो विभाजन की यह त्रासदी समाज के लिए वरदान में भी परिणत की जा सकती है। पर अभी तो ऐसी भी कोई सम्भावना नजर नहीं आती।

विद्वत् परिषद का गठन १९४४ में किया गया था तथा उसने ५ वर्ष पूर्व ही ५० वर्ष का कार्यकाल पूरा कर लिया था पर पिछली कार्यकारिणी की निष्क्रियता के कारण उसके स्वर्ण जयन्ती समारोह का अभी तक आयोजन नहीं किया जा सका था। अब दोनों ही नव परिषदों ने अपने को ही मूल विद्वत् परिषद का सच्चा उत्तराधिकारी मान कर परिषद का स्वर्ण जयन्ती समारोह सम्पन्न कर लिया। एक ने पू० आ० श्री विद्यानन्द जी तथा श्री कनकोज्ज्वल नन्दि मुनि जी के सानिध्य में पांच दिवसीय 'समयसार वाचना' आयोजित कर उसके बीच दो घण्टे का स्वर्ण जयन्ती अधिवेशन कर औपचारिकता पूरी कर ली, तो दूसरी ने विगत जून मास में सागानेर में पू० मुनि श्री सुधा सागर जी द्वारा भूगर्भ स्थित रत्नमयी प्रतिमाओं के प्रदर्शन समारोह के बीच अपना स्वर्ण जयन्ती समारोह भी सम्पन्न कर लिया। **तीर्थंकर वाणी** (जुलाई ९९, पृ० ३४) के विद्वान सम्पादक लिखते हैं कि स्वर्ण जयन्ती महोत्सव में "देश के लगभग १७५ विद्वान आमन्त्रित थे–उपस्थित थे। समयाभाव व अनेक कार्यक्रमों के कारण विद्वानों को अपने विचार प्रस्तुत करने का लगभग अवसर नहीं मिला। यह असन्तोष रहा"। इन दोनों स्वर्ण जयन्ती समारोहों में कतिपय विद्वानों का सम्मान भले ही किया गया हो पर धर्म व श्रमण संस्था में पनपती विकृतियों पर कोई चिन्ता व्यक्त की गई हो तथा उसकी रोकथाम के लिए कोई प्रस्ताव पारित किये गये हों, ऐसा कुछ पढ़ने में नहीं आया।

विचार-विन्दु

भट्टारक—तब और अब

—श्री अजित प्रसाद जैन

श्री ज्ञान चन्द खिन्दूका जी (जयपुर) का पत्र—"शोधादर्श के ३४वें अंक में भट्टारकों के सम्बन्ध में आपकी सम्पादकीय टिप्पणी प्रकाशित हुई थी। उसी से प्रेरणा पाकर मैंने "भट्टारक तब और अब" शीर्षक से एक आलेख जयपुर में एक संगोष्ठी में पढ़ा था। वैसे यह आलेख इन्दौर से प्रकाशित **महावीर जयन्ती स्मारिका १९९९** में प्रकाशित हो चुका है, फिर भी मैं आपकी जानकारी हेतु इस लेख की फोटो कापी आपकी सेवा में भेज रहा हूं आप इसे पढ़ अवश्य लेवें और उचित समझे तो इस पर सम्पादकीय टिप्पणी भी लिखने का कष्ट करें—मैंने आपकी टिप्पणी के सूत्र को ही आगे बढ़ाया है।"

श्री खिन्दूका जी का यह पत्र **शोधादर्श**-३४ में हमारे सम्पादकीय लेख "तीर्थ क्षेत्रों पर भट्टारक पीठों की स्थापना की वकालत" तथा उस पर "पिच्छि की मर्यादा का अवमूल्यन न हो" शीर्षक से प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी द्वारा व्यक्त की गई प्रतिक्रिया, जो **शोधादर्श**-३५ के पृष्ठ १५९-१६१ पर हमारी सम्पादकीय टिप्पणी के साथ प्रकाशित हुई है, के सन्दर्भ से लिखा गया है। श्री खिन्दूका जी, जैन समाज के जाने माने नेता, परम तीर्थ भक्त, स्वाध्यायी एवं प्रबुद्ध विचारक हैं। वे वर्षों सुप्रसिद्ध दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी के अध्यक्ष रहे हैं तथा उनके मार्गदर्शन में उक्त क्षेत्र का चतुर्मुखी विकास हुआ है। इस क्षेत्र पर भट्टारक पीठ भी अन्तिम भट्टारक चन्द्रकीर्ति जी के संवत २०२६ में देहावसान तक कायम रही है।

अपने लेख 'भट्टारक, तब और अब में' श्री खिन्दूका जी ने भट्टारक परम्परा के आविर्भाव के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि १२वीं शताब्दी में भारत में जब मुस्लिम राजसत्ता दृढ़ मूल हो गई तो नग्न मुनि चर्या का पालन असम्भव प्राय: हो गया

था। उस समय धर्म-संस्कृति व आत्म संरक्षण के लिये भट्टारक संस्था का उदय परिस्थिति जन्य अनिवार्यता बन गई थी।

भट्टारक (या सवस्त्र मुनि) परम्परा का प्रारम्भ सं० १२६४ में पदारुढ़ हुए आचार्य वसन्तकीर्ति द्वारा मंडपदुर्ग (मांडवगढ़) से किया जाना माना जाता है। ई० सन् १३६३ के एक शिलालेख के अनुसार भट्टारक (आचार्य) प्रभाचन्द्र द्वारा दिल्ली में सुलतान फिरोजशाह के शासन काल में वस्त्र धारण करने की प्रथा का आरम्भ किया गया था। यद्यपि व्यवहार में भट्टारक का वस्त्र धारण करना समर्थनीय ठहरा दिया गया तथापि सिद्धान्त रूप में नग्नता ही पूजनीय मानी जाती रही। १९वीं शताब्दी तक भट्टारकों की दीक्षा नग्न होकर ही होती थी तथा अभी पिछली पीढ़ी तक महेन्द्रकीर्ति जी आदि भट्टारक नग्न हो कर ही भोजन करते थे। कुछ मृत्यु समीप आने पर नग्न अवस्था लेकर सल्लेखना स्वीकार करते थे।

भट्टारकों ने मूर्तियों और मन्दिरों की प्रतिष्ठा का कार्य प्रमुख रूप से किया, संगीतमय पूजा, भजन, कीर्तन, भक्तिभाव पूर्ण नृत्य को प्रश्रय दिया। क्षेत्रपाल, यक्ष, शासन देवियों की मूर्तियों की भी तीर्थंकर प्रतिमाओं के साथ-साथ मन्दिरों में स्थापना की परम्परा डाली। भट्टारकों ने प्राचीन पांडुलिपियों एवं भण्डारों के संरक्षण-संवर्द्धन का कार्य भी प्रमुख रूप से किया तथा श्रुत साहित्य का आज जो वैभव दिख रहा है, उसमें भट्टारकों के महती योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

सामान्यतया भट्टारक मयूर-पिच्छि व कमण्डलु का प्रयोग करते आये हैं पर **आचार्य रामसेन जैसे पिच्छि रहित भट्टारकों के उल्लेख भी मिलते हैं**। कई मध्य युगीन भट्टारक पांव में पादुका भी पहनते थे तथा अपने दिवंगत गुरुओं की पादुका प्रस्थापना का महोत्सव भी करते थे।

प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी ने अपनी प्रतिक्रिया में यह अभिमत व्यक्त किया था कि पिच्छि तो महाव्रतियों तथा प्रतिमाधारियों के

हाथों में ही शोभा देती है तथा वर्तमान के भट्टारक जो ११ प्रतिमाओं की मर्यादा से भी नहीं बंधे हैं, मठाधीश बन कर मठ की सम्पत्ति व मठ के मन्दिरों के रख-रखाव और विकास आदि के कार्यों में सतत लिप्त रहते हैं, जहाज, रेल व कार से यात्रा करते हैं—ऐसे स्वामियों के हाथों में धारण किये जाने से पिच्छि की मर्यादा का अवमूल्यन ही होता है।

इस प्रश्न के उठाए जाने पर कि वर्तमान के भट्टारकों को दिगम्बर जैन आम्नाय के त्यागियों की किस श्रेणी में रखा जाय तथा उनके द्वारा मयूर-पिच्छि का धारण किया जाना कहां तक संगत है, हमने अपनी टिप्पणी में यह सुझाव दिया था कि अच्छा हो यदि इस विषय पर आज के भट्टारकों में अग्रणी श्रवणबेलगोला के जागरूक भट्टारक स्वामी स्वस्तिश्री चारुकीर्ति जी के विचार प्राप्त कर लिए जायें। श्रवणबेलगोला के भट्टारक स्वामी जी को हम **शोधादर्श** नियमित रूप से भेजते हैं और वे इसे पढ़ते भी हैं। हमें उनकी इस अति संवेदनशील विषय पर कोई प्रतिक्रिया अभी तक प्राप्त नहीं हुई है और न ही प्राप्त होने की आशा है। वस्तुत: मयूर-पिच्छि अब भट्टारक वेश का अंग (व लक्षण) बन चुकी है जिसे त्यागने के लिये बड़े साहस की जरूरत है। हमें स्मरण आता है कि स्व० आचार्य सुशील कुमार मुनि ने देहावसान से कई महीने पूर्व मुख-पट्टिका को निरर्थक मान कर त्यागने की घोषणा कर दी थी पर अन्त तक वे मुख-पट्टिका त्यागने का साहस नहीं जुटा पाये थे।

——

जिज्ञासा

श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास', लखनऊ—

शोधादर्श-३६ (नवम्बर १९९८) में 'जिज्ञासा' शीर्षक के अन्तर्गत श्री शान्तिलाल के० शहा के प्रश्नों का उत्तर देते हुए जस्टिस एम० एल० जैन ने कुछ प्रश्न अपनी ओर से दिये थे (देखें, पृ० ३०८-०९)। मैं इस दिशा में अपना समाधान देने का प्रयास कर रहा है।

चूंकि मेरा आधार श्वेताम्बर आचार्यों अथवा विद्वानों द्वारा रचित साहित्य तथा श्वेताम्बर आम्नाय मान्य आगम हैं, अतः सन्दर्भ उसी साहित्य से दिये हैं। तदपि मेरा विश्वास है कि दिगम्बर आम्नाय की मान्यता इस से भिन्न नहीं हैं।

१. पुद्गल कर्म और चेतन आत्मा की भूमिका—

सर्व दृश्यमान जगत के कारण-भूत पुद्गल सर्वथा अशक्त नहीं हैं। जिस प्रकार मदिरा पान करने वाला व्यक्ति उसके प्रभाव से सुध-बुध खो बैठता है, और निर्जीव औषधियां मनुष्य को निरोग कर देती हैं यद्यपि कभी-कभी आरोग्य प्रदान करने में समय भी ले लेती हैं, उसी प्रकार कर्म कर लेने के पश्चात् शक्तिशाली आत्मा कर्मों के आधीन हो जाता है। कर्म-पुद्गल जीव को फल प्रदान करने में सर्वथा सक्षम हैं। यह उनका स्वभाव है। कर्मोदय दो प्रकार से होता है, यथा प्राप्त-काल कर्मोदय और अप्राप्त-काल कर्मोदय। कर्म बन्ध होते ही उसी समय विपाक प्रदान आरम्भ नहीं हो जाता। कर्म निश्चित अवधि के पश्चात ही विपाक देते हैं। बन्ध और विपाक के बीच की अवधि अबाधा-काल कहलाती है। किन्तु कर्म यदि स्वाभाविक रूप से ही उदय में आयें तो आकस्मिक घटनाओं की सम्भावना एवं तपादि साधना निरर्थक हो जायेगी। अतः कर्म विपाक सहेतुक अथवा निर्हेतुक, दोनों प्रकार से होता है अर्थात् निमित्त मिलने पर अथवा स्थिति पूर्ण होने पर। जस्टिस साहब द्वारा कल्पित जीव 'क' का शरीर धारण तथा फल प्राप्ति की घटना को अप्राप्त-काल कर्मोदय अथवा सहेतुक कर्मोदय के अन्तर्गत

जान लेना चाहिए। मेरे विवेचन का आधार आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी का लेख है जो स्थानांग सूत्र ४/७६ (वृति पत्र १८२) तथा ४/७५-७९ के सन्दर्भ से प्रसूत है।

२. सिद्ध आत्मा अरूपी पर निराकार नहीं—

उत्तराध्ययन सूत्र ३६/६४ के अनुसार अन्तिम भव से आत्मा की जितनी ऊँचाई होती है उस से त्रिभाग न्यून, अर्थात् २/३, सिद्धों की अवगाहना है। इस दृष्टि से आत्मा का आकार होना चाहिए। संसारी आत्मा का आकार संकोच और विस्तार स्वभाव के कारण प्राप्त शरीर के अनुरूप ही होता है। चर्म चक्षुओं से दृष्टिगत न होने से आत्मा अरूपी है।

३. औदारिक, तेजस व कार्मण शरीर—

औदारिक तेजस और कार्मण शरीर सभी आत्म प्रदेशों में एक-मेक हो कर ही रहते हैं। भगवती सूत्र १/६ के अनुसार जीव और पुद्गल परस्पर स्पृष्ट अवगाढ़ और प्रतिबद्ध हैं।

४. जल कायिक जीवों में आत्मा—

कहा जाता है कि जल की एक बूंद में असंख्य जीव होते हैं। समुद्र और प्रलय के वारि तथा वर्षा के जल के विषय में इसी से अनुमान लगा लेना चाहिए। सम्भवत: यही दशा अग्नि, वायु और पृथ्वी कायिक जीवों के विषय में है। कहते हैं, आधुनिक वैज्ञानिकों ने शक्तिशाली अणुवीक्षण द्वारा जल की एक बूंद में ३६४५० चलते-फिरते जीवों को देखा है, किन्तु चलते-फिरते होने के कारण ये जीव तो त्रस कायिक होने चाहियें।

५. जल में आत्मा का प्रवेश कैसे—

सम्भवत: आक्सीजन और हाइड्रोजन का संयोग एक रसायनिक प्रक्रिया है, जिसके कारण अपकायिक जीवों की उत्पत्ति होती है, पुरुष के वीर्य तथा नारी के रज के संयोग के समान। उत्तर अनुमान आधारित है। आगमों में इस दृष्टि से विचार कम से कम मैंने नहीं देखा।

६. चेतन आहार का पुतला—

'शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं चतुर्दश पूर्व धरस्यैव' (तत्वार्थ

सूत्र, २/४९) के अनुसार आहारक शरीर लब्धिधारी १४ पूर्वों के ज्ञाता मुनियों को प्राप्त शरीर है। वह शुभ, विशुद्ध तथा व्याघात रहित होता है। स्पष्ट है कि यह लब्धिधारी मुनियों को प्राप्त शरीर है अतः उन्हीं की चेतना से संचालित होता है। इस लिये उस शरीर (पुतले) का अलग से न तो औदारिक, कार्मण व तेजस शरीर होने का कोई कारण हो सकता है और न ही सम्बन्ध विच्छेद् का।

७. आत्मा का शरीर में प्रवेश—

जीवात्मा तेजस तथा कार्मण शरीरों के साथ ही नव औदारिक शरीर को ग्रहण करता है। यह दोनों शरीर अप्रतिहत गति होते हैं। इन्हें किसी विशेष मार्ग की अपेक्षा नहीं होती (देखे, 'अपडिइयगई'–राय पसेनीय सूत्र, ६६/२ और 'अप्रतीघाते'–तत्त्वार्थ सूत्र, २/४१)। सामान्य रूप से जीव सभी दिशाओं से पुद्गलों को ग्रहण करता है।

श्री धन्य कुमार जैन, सिहोरा, जबलपुर—

रागद्वेश की क्रियाओं से शरीर और शरीर से होने वाली तप, त्याग, व्रत, उपवास आदि सभी क्रियायें कर्म हैं। रागद्वेष का अभाव कर आत्मलीन हो एकाकी होने की क्रिया धर्म है। क्रिया करना कर्म है और धारण करना धर्म है। कर्म में जीव क्रिया कर देहधारी होता है। धर्म में जीव क्रिया न कर देहमुक्त होता है। मानव को इसका ज्ञान न होने से वह शरीर से होने वाली तप-त्याग-व्रत-उपवास की क्रियाओं को धर्म जान मुक्ति का साधन मानता है। मानव को प्रकृति के इस नियम का ज्ञान नहीं कि जो जिससे होता है वह उसी के अनुरूप होता है। कर्म का परिणाम कर्म होता है। जीव शरीर से क्रिया कर ही शरीर वाला होता है और आत्मा की पारलौकिक क्रिया कर आत्म स्वरूप वाला हो जाता है। अतएव लौकिक क्रियाओं के करने से मुक्ति होना मानना, अज्ञानवश है। पारलौकिक सुख पारलौकिक क्रियाओं के करने से और लौकिक सुख लौकिक क्रियाओं के करने से मिलता है। लौकिक क्रियायें कर पारलौकिक

सुख पाने की कामना करना अज्ञानता है जो ज्ञानावरण कर्मबन्ध का कारण है। यह विचारणीय है कि क्या उपरोक्त धारणा मिथ्या नहीं है।

श्री शांतिलाल के० शहा, सांगली—

१. जैन धर्म का प्रथमत: नाम 'श्रमण धर्म' था, तत्पश्चात् 'अहर्त धर्म' हुआ और भगवान महावीर जो के काल में 'निर्ग्रन्थ धर्म' हो गया। इसको "जैन धर्म" नामाभिधान किसने दिया और कौन सी शताब्दी से यह प्रचलित हुआ ?

२. जैन धर्म में २४ तीर्थंकर हो गये ऐसा माना जाता है, परन्तु ४ तीर्थंकरों (ऋषभ, नेमि, पार्श्व और महावीर) के चरित्र भिन्न पद्धति से लिखे गये और बाकी सब के चरित्र एकसरीखी रुटीन पद्धति से। ऐसा क्यों ?

३. भगवान ऋषभदेव ने युगलिया व्यवस्था बन्द करके अर्ध-मानव को मानव बना दिया और नये मानव समाज का निर्माण किया, परन्तु उनके मूल चरित्र में कहीं ऐसा उल्लेख नहीं है कि उन्होंने धर्म का उपदेश (तात्त्वदर्शनिक-धार्मिक अथवा आचार-संहीतीक) भी किया। नेमिनाथ ने अहिंसा तत्त्व के लिये अपने सर्व उत्तम सुख का त्याग कर दिया और तपश्चर्या के लिये गिरि कंद-राओं में चले गये। पार्श्वनाथ ने चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया। भगवान महावीर ने उसको पंचयाम कर दिया और धर्म की व्यवस्थित रचना की। उनके निर्वाणोत्तर काल में आज जो धर्म का स्वरूप है वह धीरे-धीरे विकसित हुआ। श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार महावीर के १००० वर्ष बाद देवर्द्धिगणि ने वल्लभी वाचना में आगमों को अन्तिम रूप दिया। दिगम्बर मान्यता के अनुसार कुन्दकुन्द और पुष्पदन्त व भूतबली ने महावीर के प्राय: ६००-७०० वर्ष बाद आचार व सिद्धान्त को अन्तिम रूप दिया।

अत: ऐसी परिस्थिति में जैन धर्म की संस्थापना कौन से तीर्थंकर ने वास्तव में की और जैन धर्म की प्राचीनता के सम्बन्ध में ऐतिहासिक दृष्टि से वस्तुस्थिति क्या है ?

डा० अनिल कुमार जैन, अहमदाबाद—

पं० बनारसी दास जी को कबीर दास जी के समकालीन बताना सही नहीं है। दोनों के समय में लगभग दो सौ वर्ष का

अन्तर है। पं० बनारसी दास जी अकबर, जहांगीर तथा शाहजहाँ और कवि तुलसीदास जी के समकालीन थे जब कि कबीर दास जी उनसे दो सौ वर्ष पूर्व हो गये थे।

श्री नरेश गुप्त, नोएडा—

बाइबिल में लिखा है कि सृष्टि को उत्पन्न हुए केवल ६००० वर्ष हुये हैं अर्थात् ईस्वी सन् मिलाकर ८००० वर्ष। स्वामी दयानन्द ने **सत्यार्थ प्रकाश** में यह सिद्ध किया है कि सृष्टि की उत्पत्ति करोड़ों वर्ष प्राचीन है। प्रश्न यह है कि यदि भारत में मानव जीवन इतना ही प्राचीन है तो उसका इतिहास कहाँ है ? यदि आदिनाथ भगवान ऋषभदेव ने असि, मसि और कृषि का आविष्कार किया तो उस समय की भाषा को क्या नाम दिया, लिपि क्या थी, और इससे पूर्व भारत की बोली में किस प्रकार के शब्दों का प्रयोग होता था ? २४ तीर्थंकरों के मध्य की कड़ियों को कैसे जोड़ा जाये ?—मात्र श्रद्धा के आधार पर नहीं वरन् तर्क और विज्ञान के आश्रय से।

[श्री प्रकाश चन्द्र जैन ने जो समाधान प्रस्तुत किये हैं, वे विचारणीय हैं।

श्री धन्य कुमार जैन ने जो शंका की है, श्री शांतिलाल शहा ने जो प्रश्न उपस्थित किये हैं और श्री नरेश गुप्त ने जो जिज्ञासा की है—इन पर सुधि पाठकों द्वारा चिन्तन-मन्थन अपेक्षित है और संक्षेप में विचार आमन्त्रित हैं परन्तु यह निवेदन है कि मात्र पौराणिक अनुश्रुति का पिष्टपेषण न किया जाय। इस सम्बन्ध में इसी अंक में डा० ज्योति प्रसाद जैन का लेख Proto historic Tradition और अंक १६-१७ में हमारा लेख 'मानव सभ्यता के आदि प्रस्तोता—ऋषभदेव' व अंक ३१ में 'चक्रवर्ती भरत का ऐतिह्य', अवलोकनीय हैं।

डा० अनिल कुमार जैन ने ठीक ही बिन्दु उठाया है। **शोधादर्श**-३७ में श्री पन्ना लाल जैन द्वारा एक समान्य कथन इस अपेक्षा से किया गया है कि कबीर और बनारसी दास दोनों ही हिन्दी के भक्ति काल से सम्बन्धित हैं। विशिष्टतः कबीर का समय १३९८-१४९८ ई०, तुलसीदास का समय १५३२-१६१२ ई० और बनारसी दास का समय १५८६-१६४४ ई० सामान्य रूप से माना जाता है, और इनकी रचना धर्मिता का समय लगभग १४५० से १६५० ई० के बीच रहा।—शशि कान्त] ★

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश
प्रगति प्रतिवेदन वर्ष १९९८–९९

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०, की स्थापना सन् १९७६ में उत्तर प्रदेश शासन की 'श्री महावीर निर्वाण समिति' की उत्तराधिकारी संस्था स्वरूप एक रजिस्टर्ड सोसायटी के रूप में की गई थी। समिति का १९८७-९१ का प्रगति प्रतिवेदन **शोधादर्श-१५** (नवम्बर १९९१) के पृष्ठ ८१-८६ पर, १९९१-९२ का प्रगति प्रतिवेदन **शोधादर्श-१८** (नवम्बर १९९२) के पृष्ठ ८३-८४ पर, १९९२-९५ का प्रगति प्रतिवेदन **शोधादर्श-२५** (मार्च १९९५) के पृष्ठ ८१-८४ व ८६-८७ पर, १९९५-९६ का प्रगति प्रतिवेदन **शोधादर्श-२८** (मार्च १९९६) के पृष्ठ ९३-९७ पर, १९९६-९७ का प्रगति प्रतिवेदन **शोधादर्श-३२** (जुलाई १९९७) के पृष्ठ १४५-५० पर, तथा १९९७-९८ का प्रगति प्रतिवेदन **शोधादर्श-३५** (जुलाई १९९८) के पृ० १८१-८४ पर प्रकाशित है। प्रस्तुत प्रगति प्रतिवेदन अप्रैल १९९८ से मार्च १९९९ की अवधि के सम्बन्ध में हैं।

आर्थिक प्रगति :

समिति का नियत जमा राशि के रूप में ध्रौव्य फण्ड दिनांक १-४-१९९८ को रु० ९,९२,१३०.०० पै० था जो दिनांक ३१-३-१९९९ को बढ़ कर रु० ११,५८,३१४.०० पै० हो गया। प्राप्ति-व्यय लेखे का आडिट मेसर्स ए० जिन्दल एण्ड कम्पनी, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स, द्वारा किया गया।

शोध पुस्तकालय :

पुस्तकालय में संग्रहीत पुस्तकों का मूल्य डेढ लाख रुपये से अधिक है। पुस्तकालय में सभी भारतीय धर्मों, दर्शन एवं संस्कृति के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन के उद्देश्य से संग्रह करने का प्रयास किया गया है। जैन धर्म के सभी सम्प्रदायों के मूल ग्रन्थों, शोध प्रबन्धों तथा शोधपरक एवं सामान्य साहित्य का संग्रह करने का प्रयास किया जाता है। लखनऊ, कानपुर एवं अवध विश्वविद्यालयों के जैन विद्या पर काम कर रहे शोध अनुसन्धानकर्ताओं

द्वारा तथा अन्य जिज्ञासु विद्वानों द्वारा पुस्तकालय का उपयोग किया जाता रहा है। शोध प्रवृत्तियों का निर्देशन डा० शशि कान्त करते हैं। इस वर्ष रु० २३,०००/- मूल्य के ग्रन्थों की पुस्तकालय में वृद्धि हुई। पुस्तकालय दिगम्बर जैन मन्दिर (श्री मुन्ने लाल कागजी धर्मशाला), चारबाग, लखनऊ के एक कक्ष में स्थित है जो धर्मशाला प्रबन्ध कमेटी के सौजन्य से निःशुल्क उपलब्ध कराया हुआ है। पुस्तकालय की सोमवार को छोड़कर प्रतिदिन प्रातः ८.०० बजे से १०.३० तक नियमित रूप से खुलने की व्यवस्था है।

शोधादर्श :

जैन विद्या की विभिन्न विधाओं के विद्वानों एवं चिन्तकों की छुटपुट शोध प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से स्व० डा० ज्योति प्रसाद जी जैन 'विद्यावारिधि' के मार्गदर्शन एवं प्रधान सम्पादकत्व में समिति द्वारा इस चातुर्मासिक शोध-पत्रिका का शुभारम्भ फरवरी १९८६ में किया गया था। जून १९८८ में उनके निधन के उपरान्त उनके योग्य सुपुत्र डा० शशि कान्त और श्री रमा कान्त जैन इस शोध पत्रिका के सम्पादन का भार संभाले हैं। प्रधान सम्पादक का उत्तरदायित्व श्री अजित प्रसाद जैन वहन कर रहे हैं। वर्ष १९९८ में प्रकाशित अंक ३४, ३५ व ३६ में ३५९ पृष्ठों की उपयोगी सामग्री की समाज के प्रबुद्ध वर्ग द्वारा व्यापक सराहना हुई है, और यह उच्च कोटि की शोध पत्रिका के रूप में समादृत हुई है। **शोधादर्श** को गर्व है कि प्रधान सम्पादक श्री अजित प्रसाद जी को जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिये 'आ० विमल सागर (भिण्ड) स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार-९९' से इस वर्ष सम्मानित किया गया है।

तीर्थंकर छात्र सहायता कोष :

वर्ष १९९८-९९ में ३२ छात्र-छात्राओं को रु० ९,९८६.०० पै० की अध्ययन सहायता प्रदान की गई। छात्र-छात्रायें कक्षा सप्तम् से स्नातकोत्तर स्तर तक के थे। इस कोष का संचालन उप मन्त्री श्री नरेश चन्द्र जैन, महामन्त्री की देख-रेख में करते हैं।

(शेष पृष्ठ २८८ पर)

प्राप्ति-व्यय विवरण अप्रैल १९९८—मार्च १९९९

सम्परीक्षित लेखा

प्राप्ति

प्रारम्भिक शेष :		
(१) रिजर्व फण्ड		९,९२,१३०-००
(२) बैंक बचत खाता		८,२२५-५९
(३) नकद राशि		३,०४४-९६
	योग	१०,०३,४००-५५
समिति—सदस्यता शुल्क आदि		७५५-००
शोधादर्श—ग्राहक शुल्क आदि		१,७००-००
शोध पुस्तकालय—सदस्यता शुल्क व जमानत		८५०-००
साहित्य विक्रय		७४-००
बैंक ब्याज		५३,०४८-१८
पुर्नंनिवेश पर पूंजीगत वृद्धि		१,५४,४८१-८०
अन्य दान आदि		८९८-००
	योग	२,११,८०६-९८
	कुल योग	१२,१५,२०७-५३

व्यय

शोध पुस्तकालय		७,६६१-५०
शोधादर्श—प्रकाशन एवं वितरण		२२,५७९-००
तीर्थंकर छात्र सहायता कोष		९,९८६-००
महावीर जन कल्याण निधि		५,२१०-००
आडिट एवं आयकर परामर्शदाता की फीस		१,०२५-००
	योग	४६,४६१-५०
अन्तिम शेष :		
(१) रिजर्व फण्ड		११,५८,३१४-००
(२) बैंक बचत खाता		७,७२१-५७
(३) नकद राशि		२,७१०-४६
	योग	११,६८,७४६-०३
	कुल योग	१२,१५,२०७-५३

साहित्य सत्कार

डा० नेमीचन्द जैन : व्यक्तित्व और कृतित्व—सम्पादक-श्री प्रेम चन्द जैन; प्रकाशक-हीरा भैया प्रकाशन, ६५ पत्रकार कालोनी, कनाडिया मार्ग, इन्दौर-४५२००१; १९९९; पृष्ठ ४००; मूल्य रु० १००/-

प्राणि-मित्र, शाकाहार-प्रिय, सम्पादक-शिरोमणि, पत्र-महर्षि आदि उपाधियों से अलंकृत साहित्यकार, पत्रकार, समीक्षक, प्रकाशक, भाषा-विज्ञानी, चिंतक व दार्शनिक डा० नेमीचन्द जैन के विराट व्यक्तित्व को ४०० पृष्ठों की परिधि में समेट पाना कोई सरल कार्य नहीं है पर इस पुस्तक में संकलित लेखों में उनके निकट सम्पर्क में आये मनीषियों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से उनके बहु आयामी व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर सफल प्रकाश तो डाला ही है। पुस्तक के सम्पादक श्री प्रेमचन्द जैन तो डाक्टर साहब के अनुज ही हैं जो प्रारम्भ से ही उनके निकट सानिध्य में रहे हैं। सत्य, अहिंसा व शाकाहार प्रचार को समर्पित डा० नेमीचन्द सादगी व सरलता की प्रतिमूर्ति हैं। वयोवृद्ध तो उन्हें कहना उचित नहीं लगता क्योंकि इस ७२ वर्ष की वय में भी वे युवकोचित् उत्साह के साथ निरन्तर

(पृष्ठ २८६ का शेष)

महावीर जन कल्याण निधि :

वर्ष १९९८-९९ में ६ असहाय महिलाओं और १ वृद्ध को रु० ५,२१०.०० पै० की सहायता प्रदान की गई। इस निधि का संचालन डा० शशि कान्त, संयुक्त मन्त्री, महामन्त्री की देख-रेख में करते हैं।

विवेच्य वर्ष में समिति के विभिन्न कार्यक्रम प्रवृत्त रहे। समिति के अध्यक्ष श्री लून करन जैन नाहर तथा सहयोगीगण विशेषकर श्री बिजय लाल जैन, डा० शशि कान्त, श्री नरेश चन्द्र जैन और श्री रमा कान्त जैन के प्रति आभारी हूँ कि उन्होंने समिति की विभिन्न प्रवृत्तियों को सुचारू रूप से संचालित करने में मुझे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

—**अजित प्रसाद जैन**, महामंत्री

देश के एक अंचल से दूसरे अंचल की यात्रा में संलीन रहते हैं तथा अभी भी अथक श्रम करने की क्षमता रखते हैं। हां, ज्ञान-वृद्ध और अनुभव-वृद्ध तो वे हैं ही जिसका लाभ उनके लेखों व सम्पादकीय से तीर्थंकर के पाठकों को भी मिलता रहता है। यत्र-तत्र **समयसार** की कालजयी गाथाओं के सुरुचिपूर्ण पद्यानुवाद दिये जाने से पुस्तक की शोभा व उपयोगिता में उल्लेखनीय अभिवृद्धि भी की गई है। प्रेरणास्पद व पठनीय है।

डा० नेमीचन्द जैन के साहित्य-सिन्धु में से कुछ अमृत बिन्दु—लेखक—श्री सुरेश सरल; प्र०—हीराभैया प्रकाशन, ६५ पत्रकार कालोनी, इन्दौर-४५२००१; १९९९; पृष्ठ ६४, मूल्य रु० २०/-

जैन जगत के जाने-माने साहित्यकार, पत्रकार श्री सुरेश सरल ने अपनी सशक्त लेखनी से डा० नेमीचन्द जैन (इन्दौर) द्वारा विगत ५० वर्षों में सृजित ११० लघु पुस्तकों के विविध विषयक विशाल साहित्य का विस्तार से परिचय प्रस्तुत करते हुए उसमें परिलक्षित डाक्टर साहब के साहित्यकार, कवि, विचारक, चिन्तक, समीक्षक, पत्रकार, सम्पादक, शाकाहार-प्रचारक रूपी बहुआयामी व्यक्तित्व पर विशद प्रकाश डाला है।

सादगी की जीवन्त मूर्ति, कन्धे पर लटके झोले में ही अपना सभी दैनन्दिक आवश्यक परिग्रह संजोये, सूखी दुर्बल देहधारी फिर भी सदा नई यात्राओं के लिए तत्पर ७२ वर्षीय डाक्टर साहब को मैं वयोवृद्ध तो नहीं कहूंगा क्योंकि उनमें अभी भी युवकोचित उत्साह से काम करने की लगन व क्षमता है और आयु में मुझ से दस वर्ष छोटे भी हैं पर वे अनुभव-वृद्ध और ज्ञान-वृद्ध तो हैं ही। सरल जी ने उन्हें महासम्पादक कहा है और मैं उन्हें वर्तमान के जैन सम्पादकों में शिरोमणि मानता है। जैन पत्रकारिता को उनका अवदान अनूठा है। सरल जी की यह पुस्तक डाक्टर साहब के सम्पूर्ण साहित्य को पढ़ने की उत्सुकता जागृत करती है और यही इसकी सार्थकता है।

नमस्कार चिन्तामणि—लेखक—मुनि श्री कुन्दकुन्द विजय जी म०, अनुवादक—श्री चांदमल सोगाणी, प्रकाशक—श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ

जैन श्वेताम्बर मन्दिर, भूपतकाला, हरिद्वार; प्रकाशन वर्ष-१९९९; पृष्ठ २८३, मूल्य रु० ९५/-

इस पुस्तक में नमस्कार महामन्त्र की आराधना, साधना तथा महिमा विषयक सम्पूर्ण (श्वेताम्बर) शास्त्रीय चिन्तन मुनिराज के दीर्घ कालीन अनुभव के प्रकाश में प्रस्तुत किया गया है। विद्वान लेखक मुनिराज जी के अनुसार इस महामन्त्र में गागर में सागर गर्भित है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगटान की पद्धति है तथा धर्म की कथा है। गुजराती में लिखी मूल पुस्तक का हिन्दी अनुवाद श्री चांदमल सोगाणी ने किया है। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

अतिशय क्षेत्र बजरंगगढ—ले०-श्री रामजीत जैन एडवोकेट; प्रकाशक—भावना अगरबत्ती कं०, ग्वालियर; १९९९; पृ० ३५; मूल्य रु० १५/-

बुन्देलखण्ड की विभिन्न जैन जातियों तथा अतिशय क्षेत्रों के इतिहास-परिचय ग्रन्थ लिखने वाले श्री रामजीत जैन, एडवोकेट, ग्वालियर, एक सिद्धहस्त लेखक हैं। आलोच्य कृति में उन्होंने गुना के समीपवर्ती अतिशय क्षेत्र बजरंगगढ का परिचय प्रस्तुत किया है। बजरंगगढ़ का इतिहास लगभग १००० वर्ष प्राचीन है। किसी समय यह एक समृद्ध नगर था तथा १९वीं शती तक जैनों की भी यहां अच्छी बस्ती रही है, पर आज यह श्री हीन पड़ा है। बुंदेलखण्ड में अनेक भव्य एवं विशाल शांतिनाथ जिनालयों के निर्माता १२वीं शती के धर्मनिष्ठ धन-कुबेर अग्रवाल-वंशी पाड़ाशाह ने पहले भव्य शांतिनाथ जिनालय का निर्माण बजरंगगढ़ में ही कराया था। प्रस्तुत कृति में विद्वान लेखक ने क्षेत्र परिचय, क्षेत्र से जुड़े अतिशयों का वर्णन, शांति-कुंथ-अरहनाथ जिन पूजन, के साथ अग्रवाल जैन वंश उत्पत्ति गाथा भी दी है। पुस्तक उपयोगी एवं पठनीय हैं। इसकी उपयोगिता और बढ़ जाती यदि इसमें क्षेत्र की प्रबंध व्यवस्था तथा वर्तमान में बजरंगगढ़ में जैनों की संख्या आदि पर भी प्रकाश डाला गया होता।

—अजित प्रसाद जैन

तत्त्वानुशीलन—लेखक—श्री शशीकान्त मनसुखभाई शेठ; प्रकाशक—श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१; १९९८; पृ० १६३+१२+चित्र; मूल्य स्वाध्याय

सुरेन्द्र नगर (गुजरात) में वैष्णव कुल में जन्मे और गीता, भागवत, रामायण और महाभारत जैसे धर्म ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त श्री शशीकान्त भाई शेठ (२४ नवम्बर, १९३३—२२ मार्च, १९९९) आत्मज्ञानी सन्त कानजी स्वामी के प्रवचनों और आध्यात्मिक सन्त श्रीमद् राजचन्द्र के ग्रन्थों से ऐसा प्रभावित हुए कि उनकी विचारधारा पलट गई। उन्होंने उनसे प्राप्त ज्ञान तथा अपने स्वयं के चिन्तन-मनन से अपनी अनुभूतियों को श्रोताओं और पाठकों के समक्ष रखा। अध्यात्म जैसे गूढ़ विषय पर गुजराती भाषा में प्रकाशित उनके २१ लेखों (सुविधि, पर्याय में एकत्व, आत्म-रुचि, सत्पात्रता, स्वाध्याय पद्धति, विवक्षा छत्तीसी, भाव सन्तुलन रूप अनेकान्त, ज्ञान, मंगल प्रारम्भ, परिणमन में अभिप्राय की भूमिका, भक्ति, आत्म-सन्तुलन, अष्टांग विभूषित अखण्ड सम्यग्दर्शन, सरलता, श्री जिनेन्द्र दर्शन, आत्म-उन्नति का प्रशस्त क्रम, विज्ञान और धर्म, समकित बीज, एक महान समस्या और उसका निराकरण, सम्यक्त्व प्राप्त करने वाला आत्मार्थी कैसा हो ?, और सम्यक्त्व क्या है ?) का हिन्दी रूपान्तर उनके संक्षिप्त जीवन परिचय के साथ प्रस्तुत पुस्तक में समाहित है। अध्यात्म तत्त्व रसिकों के लिये पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

आस्था और अन्वेषण—सम्पादक-श्री सुरेश जैन, आई० ए० एस०; प्रकाशक—ज्ञानोदय विद्यापीठ, भोपाल; पृष्ठ १६+१३३+चित्र; अप्रैल १९९९; मूल्य १००/-

मेसर्स के० एस० गार्मेण्ट्स, २५, खजूरी बाजार (मूलचन्द मार्केट के पीछे), इन्दौर-४५२००२ के सौजन्य से प्राप्त प्रस्तुत संकलन में २४ आलेख हैं। इसमें २ से ४ अक्तूबर, १९९८, को बीना में सम्पन्न चतुर्थ जैन-विज्ञान-विचार-संगोष्ठी में वाचन किये गये आलेखों में से १० को संजोया गया है। साथ ही, १९९४, १९९५

व १९९६ में क्रमशः गुना, झांसी और इन्दौर में सम्पन्न प्रथम, द्वितीय व तृतीय जैन विज्ञान विचार संगोष्ठियों में पठित ११ आलेख भी इसमें संकलित किये गये हैं।

इन आलेखों के माध्यम से परम्परागत आस्था को आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से जोड़ने का प्रयास किया गया है। डा० अनिल कुमार जैन का 'क्लोनिंग तथा कर्म सिद्धांत', श्री शांतिलाल जैन का 'आशीर्वाद का विज्ञान', **रीडर्स डाइजेस्ट** से संकलित 'प्रार्थना से स्वास्थ्य लाभ', **नई दुनिया** से उद्धृत 'रोग मुक्त भी करता है संगीत का जादू' और श्री नीरज कलमकर का 'पिरामिड : एक आश्चर्य', सामान्य पाठकों की दृष्टि से विशेष रूप से रोचक और ज्ञानवर्द्धक हैं। कागज, मुद्रण, साज-सज्जा आदि की दृष्टि से प्रस्तुत संकलन उत्तम कोटि का है।

मन्दिर—ले०-मुनि श्री अमित सागर; प्रकाशक—अनिल कुमार जैन, चन्द्रा कापी हाउस, हास्पिटल रोड, आगरा; पृष्ठ ८४+आवरण; ९वां संस्करण १९९७; मूल्य आचरण-चिन्तन-मनन-समीक्षा

वास्ट जैन फाउंडेशन, कानपुर, के श्री त्रिभुवन चन्द्र जैन के सौजन्य से प्राप्त यह कृति ३६ वर्षीय युवा मुनि श्री के प्रभावशाली सरल भाषा में दिये गये सात प्रवचनों का संकलन है। यह जीवन में धर्म और मन्दिर की उपयोगिता के संबंध में मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रकाश डालती है। पुस्तक मुनि श्री के ज्ञान एवं प्रतिभा की परिचायक है तथा आबाल-वृद्ध सभी श्रावकों के लिये पठनीय एवं मननीय है, भले ही कहीं-कहीं इसमें व्यक्त विचारों से सहमत न हों। आवरण पृष्ठों पर जिन मंदिर के चित्रों ने पुस्तक के शीर्षक को सार्थक किया है। कागज, मुद्रण आदि की दृष्टि से भी कृति उत्तम है।

श्रमण (जुलाई सितम्बर १९९९)—प्रधान सम्पादक—प्रो० भागचन्द्र जैन 'भास्कर' तथा सम्पादक—डा० शिव प्रसाद; प्रकाशक—पार्श्वनाथ विद्यापीठ, आई. टी. आई. मार्ग, करौंदी, बी. एच. यू., वाराणसी-२२१००५; पृष्ठ २००; मूल्य रु० २५/-

पार्श्वनाथ विद्यापीठ की त्रैमासिक शोध-पत्रिका का वर्ष ५० का यह अंक ७-९ पर्युषण अंक के रूप में प्रस्तुत है। इसमें विद्यापीठ

के नये निदेशक के परिचय, विद्यापीठ प्रांगण और जैन जगत के विविध समाचारों तथा साहित्य-सत्कार के अतिरिक्त हिन्दी, गुजराती और अंग्रेजी भाषाओं के तीन खण्ड हैं। हिन्दी खण्ड में प्रो० भागचन्द्र जैन 'भास्कर' के पर्युषण, दस धर्म, तीर्थंकर ऋषभदेव और उनकी सांस्कृतिक परम्परा, तथा महावीर और उनकी परम्परा, विषयक १३ आलेख हैं। गुजराती खण्ड में भाषाओं के विकास में प्राकृत-पालि भाषा विषयक पं० बेचरदास दोशी का तथा जैन परम्परा का अपभ्रंश साहित्य को अवदान विषयक प्रो० हरिवल्लभ चु० भयाणी के आलेख हैं। अंग्रेजी खण्ड में श्री पद्मनाभ एस० जैनी के जैन पर्व और भोजन के प्रति जैन दृष्टिकोण विषयक दो आलेख समायोजित हैं। पर्युषण को समर्पित यह अंक श्रावकों के लिये ज्ञान-वर्द्धक सामग्री संजोये हुए है।

मुक्कुडे वर्ष २६, अंक २ (अगस्त १९९९)—सम्पादक-श्री डी० सम्पतकुमार; प्रकाशक—जैन यूथ फोरम, ३ बोग रोड, चेन्नई-६०००१७; पृष्ठ ८०; मूल्य एक प्रति रु० ५/-

तमिल मासिक मुक्कुडे का यह रजत जयन्ती अंक है। सन् १९७४ ई० से जैन यूथ फोरम इस पत्रिका के माध्यम से तमिल भाषा में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति और साहित्य प्रसार की सेवा में रत है। तमिल भाषा-भाषियों के लिए प्रचुर पठनीय सामग्री संजोये हुए प्रस्तुत अंक में तमिलेतर पाठकों के लिये भी १२ पृष्ठों में इंगलिश में प्रो० ए० चक्रवर्ती का लेख The Basic Principles of Jainism; Jain Journal अप्रैल १९६९ से उद्धृत Jainism in Kerala; श्री एस० गजपति जैन का लेख Popularity of Yaksa—Yaksi Worship in Tamil Nadu; तथा श्री प्रेम चन्द जैन का लेख The Jaina Contribution to the History of Ancient India द्वारा पठनीय सामग्री संजोयी गई है। इसके लिये सम्पादक और प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

मानस चन्दन (सोलहवाँ पुष्प)—प्रधान सम्पादक—डा० गणेशदत्त सारस्वत—सारस्वत-सदन, सिविल लाइन्स, सीतापुर-२६१००१; पृष्ठ ४४ + ४; जुलाई-सितम्बर १९९९; मूल्य रु० १००/- वार्षिक

मर्यादा पुरुषोत्तम राम और गोस्वामी तुलसीदास जी के **रामचरितमानस** को समर्पित इस त्रैमासिक पत्रिका का प्रस्तुत अंक अपने अन्तस् में अपनी बात, पुस्तक समीक्षा, सांस्कृतिक समाचार और पाठकों की प्रतिक्रियाओं के साथ-साथ विभिन्न मनीषियों के २५ आलेख/रचनाएं संजोये हुए है। डा० रामशंकर द्विवेदी ने अपने "मानस में पर्यायिकी" में शब्द-पारखी तुलसी द्वारा मानस में एक ही शब्द को यथा 'रति' को ही कई बार विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त किये जाने का सुन्दर विवेचन किया है। अनेक रचनाकारों ने वर्तमान व्यवस्था पर चोट की है। श्री राजमणि राय का गीत "अभी नहीं बाँसुरी बजाओ मन मीरा न हुआ" मन को भाया। समग्रतः अंक ज्ञानवर्द्धक एवं पठनीय है।

—रमा कान्त जैन

इतिहास के अनावृत्त पृष्ठ (जैन धर्म की ऐतिहासिक खोज)—प्रवक्ता: आचार्य सुशील मुनि, सं०-आचार्य डा० साध्वी साधना; प्र०—आचार्य सुशील मुनि मेमोरियल ट्रस्ट, आचार्य सुशील आश्रम, डिफैंस कालोनी, नई दिल्ली-११००२४; १९९९; पृ० ४७; मूल्य रु० २०/-

आचार्य सुशील मुनि की पंचम पुण्य तिथि पर अप्रैल १९९९ में उनके द्वारा जैन धर्म की ऐतिहासिक खोज के प्रसंग में अहिंसा के सार्वकालिक, सार्वदेशीय, सार्वभौम तत्त्व का जो सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक अध्ययन किया गया था, वह इस पुस्तक में समाहित है। व्रात्य संस्कृति प्राग्वैदिक-प्राग्आर्य विचारधारा की सूचक है और उसका श्रमण परम्परा से पूर्वापर सम्बन्ध है। श्रमण व्रत, अहिंसा एवं त्याग पर बल देते हैं और ब्राह्मण कर्मकाण्ड, यज्ञ एवं संस्कार पर। श्रमणों में साधुओं की और ब्राह्मणों में गृहस्थों की सत्ता सर्वोपरि है। लेखक की यह स्थापना विचारणीय है कि "वेद भारत की समस्त विभूतियों, सन्तों, ऋषियों, मुनियों, मनीषियों की पुनीत वाणी का संग्रह है। यही कारण है कि श्रमणों या आर्येतर जातियों ने अन्य ग्रन्थों का निर्माण नहीं किया। सबके विचारों का संकलन वेदों में हो जाने से यज्ञपरक भाग से ब्राह्मणों का तथा त्यागपरक

भाग से श्रमणों का समाधान होता रहा। जैन विचारकों का मत है कि भले ही आज वेद ब्राह्मण-धर्म के ग्रन्थ हो गये हैं, लेकिन वे बहुत वर्षों तक श्रमण संस्कृति के भी आधार ग्रन्थ रहे हैं, जिनमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की वाणी संकलित है।"

एक धर्मोपदेष्टा और धर्म प्रचारक होने के बावजूद सुशील मुनि का यह कथन उनके उदारवादी दृष्टिकोण का परिचायक है कि "जब सभी धर्म ऊँचे और उत्तम कोटि के हैं, तो मेरी समझ में नहीं आता कि क्यों एक धर्म दूसरे धर्म के अनुयायियों को अपने में मिलाने की चेष्टा करता है। अगर समझ-बूझ कर कोई एक आदमी एक उसूल से दूसरे उसूल में जाता है तो वह अलग बात है। लेकिन लोभ से, लालच से, जोर-जबरदस्ती से, बहलावे से अगर कोई एक धर्म अपना प्रचार करना चाहता है तो वह अपने पर ही कुठाराघात करता है।"

प्राक्कथन में श्री शरदकुमार साधक ने इतिहास और पौराणिक अनुश्रुतियों का एक समन्वय किया है जो विचार प्रेरक है।

आत्मा का वैभव—ले० श्री दर्शन लाड; प्र०—अरिहन्त इन्टरनेशनल/मेघ प्रकाशन, २३९, दरीबाकला, दिल्ली११०००६; १९९८; पृ० १७६ + viii; मूल्य रु० ५०/-

जैन अध्यात्म के सर्व प्राचीन विवेचक आचार्य कुन्दकुन्द (ई० पू० ८-४४ ई०) के तीन सुप्रसिद्ध ग्रन्थों का सरल सुबोध भाषा में सार-संक्षेप श्री दर्शन लाड द्वारा इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। 'जगत और संसार' के अन्तर्गत सांसारिक परतन्त्रता एवं आत्मिक स्वतन्त्रता विषयक **पंचास्तिकाय-संग्रह** का, 'आत्मज्ञान-रहस्य' के अन्तर्गत आत्मा में समाहित ज्ञान और सुख विषयक **प्रवचनसार** का, और 'आत्मा का वैभव' के अन्तर्गत आत्मा के संसरण की कथा एवं मुक्ति के मार्मिक मार्ग दर्शन विषय **समयसार** का गाथावार निर्वचन है।

श्री अशोक सहजानन्द ने भूमिका में आचार्य कुन्दकुन्द का संक्षिप्त परिचय दिया है।

गूढ़ विषय का विवेचन सामान्य पाठकों के लिए भी सुबोध है। अपनी आजीविका के लिए श्री लाड यद्यपि पिछले ५० वर्षों से फिल्म जगत से जुड़े रहे हैं, उनकी अपने धार्मिक संस्कारों के प्रति आस्था और अध्यात्म में अभिरुचि सराहनीय है।

सप्तसन्धान महाकाव्य : एक समीक्षात्मक अध्ययन—ले०—डा० श्रेयांस कुमार जैन, प्र०—अरिहन्त इन्टरनेशनल, २३९, गली कुंजस, दरीबा, दिल्ली-११०००६; १९९२; पृ० २४० + viii; मूल्य रु० १५०/-

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध पर यह अध्ययन आधारित है। निर्देशन डा० नारायण प्रसाद द्विवेदी का रहा। प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर के निदेशक महोपाध्याय विनय सागर ने भूमिका दी है।

श्वेताम्बर तपागच्छ संघ के मेघविजयगणि ने १८वीं शती के प्रारम्भ में संस्कृत में **सप्तसन्धान** महाकाव्य की रचना की थी। यह काव्य ९ सर्गों में है और सप्त-अर्थ श्लेषात्मक है। इसमें एक ही साथ ऋषभनाथ, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर, रामचन्द्र और श्रीकृष्ण का चरित कहा गया है। डा० जैन ने **सप्तसंधान** के अन्तर्गत आई भौगोलिक, धार्मिक एवं दार्शनिक शब्दावली को स्पष्ट किया है और सहायक ग्रन्थ सूची भी दी है। सन्धान काव्य ऐतिहासिक विवेचन, ग्रन्थकार और ग्रन्थ, कथावस्तु/कथास्रोत, साहित्यिक परिशीलन, वर्णन कौशल, और तुलनात्मक विवेचन के अन्तर्गत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

डा० जैन ने यह अध्ययन पर्याप्त श्रम के साथ प्रस्तुत किया है और संस्कृत में जैन कवियों की सन्धान शैली को अध्यानुत्सुओं के लिए सुलभ किया है, जिसके लिए वह साधुवाद के पात्र हैं।

अंक दर्शन—ले०—श्री गोविंद शास्त्री; प्र०—मेघ प्रकाशन/अरिहंत इंटरनेशनल, २३९, गली कुंजस, दरीबा, दिल्ली-११०००६; १९९७; पृ० १०४; मूल्य रु० ६०/-

अंक शास्त्र (Numerology) को इस शताब्दी में कीरो (Cheiro) ने प्रसिद्धि प्रदान की। अरब के नजूमियों ने और

तत्पश्चात फ्रांस और ब्रिटेन के कुछ विचारकों ने व्यक्ति के जीवन और चरित्र सम्बन्धी फलादेश के लिए अंकों को आधार बनाया। श्री गोविन्द शास्त्री ने इस विषय को भारतीय मूल के स्वरूप में प्रस्तुत करने का प्रयास इस पुस्तक में किया है। उनका निष्कर्ष है कि अंकों के आधार पर भी चरित्रगत गुण-दोषों का विवरण अधिकतर ठीक उतरता है।

श्री शास्त्री का यह प्रयास भारतीय-चिन्तन के अन्तर्गत अंक शास्त्रीय जिज्ञासा को प्रेरित और अग्रसर करने में सहायक होगा।

द्वादश भाव रहस्य—ले०—पं० दुर्गा प्रसाद शुक्ल; प्र०—मेघ प्रकाशन/अरिहन्त इन्टरनेशनल, २३९, गली कुंजस, दरीबा कलां, दिल्ली-११०००६; १९९९; पृ० १५८; मूल्य रु० ८०/-

ज्योतिष के माध्यम से अपना भविष्यत् जानने की लालसा सामान्य है। यह एक घटित पर आधारित (deductive) विद्या है, अतः इसमें सामान्य जिज्ञासा का निदर्शन और किसी जातक की प्रवृत्ति का निर्देश तो सम्भव है परन्तु फलादेशों पर अन्ध-विश्वास करना उचित नहीं है। लेखक ने ठीक ही सावधान किया है कि इन फलादेशों के आधार पर किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में कोई निर्णय न करें।

सरल भाषा में ज्योतिष के विभिन्न प्रामाणिक ग्रन्थों/विद्वानों के आधार से और स्वयं अपने अनुभव के भी आधार से पं० दुर्गा प्रसाद शुक्ल ने द्वादश भावों और उनमें ग्रहों की स्थिति का फलादेश दिया है जो प्रथम दृष्टया पाठक को आकर्षित करता है और अपने बारे में जानने की जिज्ञासा को प्रेरित करता है। शुक्ल जी का प्रयत्न स्वागतार्ह है। पुस्तक पठनीय और जिज्ञासा-प्रेरक है।

भारतीय स्वातंत्र्यलढ्यातील जैनांचे योगदान—सम्पादन—प्राचार्य डी० डी० मगद्म व श्री श्रेणिक अन्नदाते; प्र०—सौ० शरयू दफ्तरी, सम्पादिका : जैन बोधक, रत्नत्रय हीट एक्सचेंजर्स, विद्यानगरी मार्ग, कालिना, सांताक्रूज, मुम्बई-४०००९२; २२-४-१९९९; पृ० २४६; मूल्य रु० ८०/-

स्वतन्त्रता प्राप्ति की स्वर्ण जयन्ति पर १९९७ में भारत की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष में जैन धर्मावलम्बियों द्वारा किये गये योगदान का आकलन करने का विचार **जैन बोधक** की विदुषी सम्पादिका सौ० शरयू दफ्तरी को हुआ। उसी के प्रतिफलन में प्रस्तुत ग्रन्थ मराठी भाषा में प्रकाश में आया है। उनका यह विचार समीचीन है कि यद्यपि जैन समाज अल्प संख्या में है, इसकी प्रत्येक क्षेत्र में सहभागिता महत्त्वपूर्ण रही हैं, और अंग्रेजी शासन की दासता से मुक्ति के लिए संघर्ष में इस समाज के योगदान का समग्र इतिहास लिखा जाना अभीष्ट है। इस सम्बन्ध में श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीय की **जैन जागरण के अग्रदूत**, डा० ज्योति प्रसाद जैन की **प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलायें**, और श्री सतीश कुमार जैन की Progressive Jains of India, भी अवलोकनीय हैं।

महाराष्ट्र प्रदेश की जैन समाज द्वारा १९०० से १९४७ तक की अवधि में विदेशी शासन की राजनैतिक व आर्थिक दासता से स्वतन्त्रता के लिए जो योगदान किया गया उसका एक व्यवस्थित आकलन प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। महिलायें भी इसमें सहभागी रहीं। मराठवाडा, विदर्भ, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पंजाब और उत्तर प्रदेश के स्वतन्त्रता-सेनानियों का परिचय भी इसमें समाहित है। हैदराबाद रियासत के भारतीय संघ में विलय से सम्बन्धित आन्दोलन में भी जैनों की भूमिका की जानकारी मिलती है। परिशिष्ट में ५६ सेनानियों का विवरण तालिकाबद्ध है और १८ के छाया चित्र भी दिये गये हैं। इस प्रकार के साहित्य को प्रकाश में लाने की आवश्यकता है ताकि स्वतन्त्रता संग्राम में जैन समाज के योगदान को इतिहास में अनदेखा न किया जाए। इसके प्रणयन से सम्बद्ध लेखक, सम्पादक-द्वय और प्रकाशक साधुवाद के अधिकारी हैं।

पयाम-ए-रहबर—श्री जितेन्द्र मोहन सिन्हा 'रहबर' का कलाम; संयोजन—श्री भूपेन्द्र प्रताप सिन्हा; प्र०—कान्ति ओम प्रकाशन, सी-१२०५, राजाजीपुरम्, लखनऊ-२२६०१७; पृ० xix + २३६; १९९५; मूल्य रु० २००/-

श्री जितेन्द्र मोहन सिन्हा (२४-९-१९११ ज०, बिजनौर—१२-८-१९९३ मृ०, लखनऊ) व्यवसाय से अध्यापक थे और स्वभाव से शायर व दार्शनिक। जीवन के जिन कटु-मृदु अनुभवों को उन्होंने जीया, उनकी अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी गज़लों और कविताओं में की। उनका यह कलाम उनकी मृत्यूपरान्त उनकी पुत्री और पुत्रद्वय ने नागरी लिपि में प्रकाशित कर साहित्य-रसिकों को सुलभ कराया जिसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं। वह प्रारम्भ में 'नादां' तखल्लुस से लिखते थे, पर बाद को १९४४ से 'रहबर' के नाम से ही रचना की। 'रहबर' ने बड़ी साफ़गोई से अपना जीवन-परिचय संक्षेप में दिया है। ज़िन्दगी के वीराने में भी दिल को शाद किये रहने की उनकी अपनी विधा थी। इस संकलन में उनकी १३२ उर्दू में रची गज़लें और नज्में हैं और ८ हिन्दी में की गई रचनायें हैं जिनमें 'पिपासा' शीर्षक से एक गज़ल है और 'ज्ञानधारा' उनकी आध्यात्मिक अनुभूति से प्रसूत है। कुछ अशआर आज के हालात के लिये भी मौज़ू हैं—

बहुत गुमराह करते हैं हमारे रहनुमां हमको,
नज़र आती है किश्ती ग़र्के गरदाबे बला हमको।
नहीं कुछ रहज़नों से कम सियासी पार्टियां अपनी,
वतन के लूटने वालों से क्या होगा नफ़ा हमको।

और

आपसी झगड़ों से नेताओं के अब गारत हूँ मैं,
दुश्मनों का भी मुरब्बी हूँ वतन भारत हूँ मैं।

श्री रहबर के जीवन-दर्शन को समझने के लिये काफ़ी है—

हर दर्द में दरमां की तासीर नज़र आई,
तकलीफ़ में राहत की तदबीर नज़र आई।

और

रुसवा हुआ, गरीब रहा, दरबदर फिरा,
'रहबर' बदी की राह पे मायल नहीं हुआ।

इस सुन्दर कृति को उपलब्ध कराने के लिये हम 'रहबर' के अनुज श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा के आभारी हैं।

Jinamanjari, XX, 2, Oct. 1999—Ed. Dr. S. A Bhuvanendra Kumar, 4665 Moccasin Trail, Mississauga, Canada L4Z 2W5; pp. 7 + 47; Annual Rs. 100/-

It is a bi-annual journal. The instant issue contains 10 articles, including one (**Jainism and Mahavira**) under my name. Unfortunately it has been badly multilated and totally distorted due to the editor's over-indulgence; only a few sentences have been lifted here-and-there from my paper which was sent a few years ago; and, therefore, it should not be taken as authored by me. This makes the authenticity of other articles also suspect. However, being the only Jain Journal published outside India, it serves as a window on the activities of the Jain community, as also the awareness about Jainism and its studies, in the North American continent.

Biology in Jaina Treatise on Reals—by Dr. N. L. Jain; pub. Parsvanatha Vidyapitha, I. T. I. Road, Varanasi-221005; 1999; pp. 204; price Rs. 150/- (P.B.)/Rs. 200/- (H.B.)

Dr. N. L, Jain has rendered into English the 2nd chapter of Umasvati's **Tattvartha Sutra** with Akalanka's **Rajvartika** commentary on it and given his supplementary comments to further elucidate the subject. **Tattva** has been rendered into English as **Real**. This chapter has 53 aphorisms and it deals with Jiva which has been interpreted by Dr Jain as **Living Beings**. He has tried well to rationalise the subject-matter with reference to the scientific knowledge of biology. He has also attempted to reconcile the Digambara and Svetambara versions of the text.

In the Introduction Dr. Jain has dwelt upon the time and biography of Umasvati, the text and contents of the Tattvartha Sutra, the commentaries and translations, and the **Rajavartik** and its author Bhatta Akalanka As regards the date and life and works of Umasvati and Akalanka, a reference to Dr. Jyoti Prasad Jain's **The Jaina Sources of the History of Ancient India** would have been useful.

The Appendices and Index are a useful addition. On the whole, the author deserves congratulations for this welcome addition to the existing literature on the subject.

Jainism : A Pictorial Guide to the Religion of Non-violence—by Kurt Titze; pub. Motilal Banarsidass Publishers Pvt. Ltd., Bun-

galow Road, Jawahar Nagar, Delhi-110007; 1998; pp. xii + 267, profusely illustrated; price Rs 2500/-

As the title itself suggests, the instant book on Jainism is a Pictorial Guide so that the reader may be inquisitive to ask his way to spots and sites that are not mentioned in tourist guide books and know about Jainism, one of the least known religions in the world, at first sight. The author Kurt Titze hails from Germany and his curiosity to know more about Jainism prompted him and his wife Martha to travel through India, visit sites, temples, monuments and institutions, meet the saintly reverred in Jainism and witness some of the rituals, as also to study a mass of literature on Jainism as enumerated in the Bibliography.

Besides his own descriptions and dissertations the author has included Jyoti Prasad Jain's **The Genesis and Spirit of Jaina Art**, Vilas A. Sangve's Meaning of Jainism and **Jaina Culture**, Klaus Bruhn's **The Jaina Art of Gwalior and Deogarh**, and Noel Q. King's **Jaina Dawn in the West**. Pictorial description has been given, with black-and-white and colour photographs and maps, of 67 sites spread over Karnataka, Tamil Nadu, Maha--rashtra, Gujarat, Madhya Pradesh, Rajasthan, Uttar Pradesh and Bihar. Pictorial information is also given on the monks and nuns, charitable and social tradition, symbols, mantras and parables, and music and dance in Jainism, and also on the first Jaina temple in Europe, located in the Oxford Street, Leicester, U. K.

The author took special pains to locate the sons of Dr. J. P. Jain, and Mr. Kailash Chand Jain (Safdarjung Development Area, New Delhi) who had pushed on the author to produce the book, graciously sent a a copy, for which I am specially beholden to both the gentlemen.

Though the volume is primary aimed at arousing the interest of the Western world in Jainism, so far it is the most comprehensive pictorial guide (with 351 illustrations) on Jainism which covers all the major sects of the Jains, namely, the Digambaras, Svetambaras, Sthnakavasis and the Terapanthis. It is a highly welcome and commendable contribution to the field of Jains studies.

—Dr. Shashi Kant

समाचार विमर्श

—श्री अजित प्रसाद जैन

बालाचार्य का वर्षायोग

दि० २८ अक्टूबर, ९९, के जैन मित्र में प्रकाशित समाचार सार—तीर्थोद्धारक खण्ड विद्या धुरन्धर बालाचार्य श्री योगीन्द्र सागर म० का चातुर्मास भीण्डर नगर (राज०) के निकट ध्यान—डूंगरी पर महती प्रभावना के साथ हो रहा है। पिछले कुछ वर्षों से इस टेकरी पर अतिशय क्षेत्र विकसित किया जा रहा है। बालाचार्य जी के वर्षा योग से इस नवोदित क्षेत्र पर विकास की एक लहर ही दोड़ गई है तथा एक करोड़ की अनुमानित लागत के कई निर्माण कार्य कराये जा रहे हैं। इनमें आचार्य श्री शांतिसागर सभागार का तो दो मास की अल्पावधि में ही निर्माण पूरा होकर महासभा अध्यक्ष जी द्वारा लोकार्पण भी किया जा चुका है तथा बालाचार्य श्री योगीन्द्र सागर धर्मशाला के लिये २५ कमरों की (रु० ३५००० प्रति कमरा) स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। गुरुदेव के सानिध्य में महासभा के केन्द्रीय संगठन मंत्री जी द्वारा उदयपुर जिला महासभा अधिवेशन एवं सम्मान समारोह भी बड़ी भव्यता के साथ सम्पन्न किया जा चुका है। समाचार का समापन गुरुदेव बालाचार्य जी का प्रशस्त गुणानुवाद करते हुये इस प्रशस्ति के साथ किया गया है कि "साधु वो जो समाज को जोड़े, धर्म प्रभावना करे स्वयं व दूसरों की आत्मोन्नति के प्रयास करे"—ऐसे हैं बालाचार्य श्री। उनके आभा मण्डल में त्याग तपस्या का स्वरूप झलकता है।

सागवाड़ा की पहाड़ी पर बालाचार्य जी के मार्ग दर्शन एवं निर्देशन में निर्माणाधीन नवोदित अतिशय क्षेत्र योगीन्द्रगिरि पर सम्पन्न हुई पंच कल्याणक प्रतिष्ठा के दौरान २२ जून, ९९, को बालाचार्य जी की डोली में बिठा कर निकाली गई भव्य शोभा यात्रा तथा चातुर्मासोपरांत उनके भट्टारकीय पट्टाभिषेक किये जाने की घोषणा के समाचारों से दिगम्बर जैन समाज के प्रबुद्ध जनों में भारी खलबली मची थी तथा उनके इन दोनों उपक्रमों की भारी

भर्त्सना की गई। इस अंक का हमारा सम्पादकीय लेख भी उक्त समाचारों के ही प्रसंग से लिखा गया है। बालाचार्य जी के ध्यान-डूंगरी समाचारों से तो यह स्पष्ट है कि जब तक समाज के एक महत्वपूर्ण वर्ग द्वारा सभी दिगम्बर मुनि मुद्राधारियों को समान रूप से पूजनीय माना जाता रहेगा, ऐसे मुनि वेशियों की जय-जयकार होती रहेगी तथा शिथिलाचार की रोकथाम की आशा क्षीण ही बनी रहेगी। धार्मिक शिक्षण शिविरों में गुरु मूढ़ता के विषय में भी शिक्षण दिया जाना चाहिए।

पंच-कल्याणक प्रतिष्ठाएं सादगी से

सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठाचार्य पं० फतेहसागर जी ने फरवरी सन् २००० में दिल्ली, डूंगरपुर तथा डिब्रूगढ़ में अपने द्वारा सम्पन्न कराई जाने वाली पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं को अत्यन्त सादगी के साथ, साज-सज्जा रहित, बिना किसी नाटकीय प्रदर्शन के, कराने का निर्णय लिया है। इन प्रतिष्ठाओं में व्यसनी कलाकारों को न बुलाकर केवल पूजा-पाठ, प्रवचन तथा मन्त्रोच्चार की क्रियाओं पर विशेष ध्यान देकर तीर्थंकर प्रभु के आदर्श चरित्र को ही प्रस्तुत किया जायेगा। उन्होंने कोटा व मुम्बई में होने वाली प्रतिष्ठाओं के आयोजकों को भी तदनुसार सुझाव दिया है।

प्रतिष्ठाचार्य जी का निर्णय समय की मांग है, अभिनन्दनीय है तथा अन्य प्रतिष्ठाचार्यों द्वारा अनुकरणीय है। आशा है प्रतिष्ठाचार्य जी ने अपने पारिश्रमिक/दक्षिणा में भी तदनुसार ही कटौती कर दी होगी। वैसे हमारी समझ में तो अब पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं पर रोक लगानी चाहिए। हमें अपने मन्दिरों को मूर्तियों का संग्रहालय नहीं बनाना चाहिए, अत्यधिक मूर्तियां अविनय का ही कारण बनती हैं। नवीन मन्दिरों को भी यथासम्भव अन्य मन्दिरों से प्रतिष्ठित मूर्ति प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। प्राचीन सिद्धक्षेत्रों, कल्याणक क्षेत्रों व मन्दिरों के जीर्णोद्धार-विकास पर अधिक ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

समय रहते समाज चेते

अहिंसा महाकुम्भ—एक नया तमाशा

—डा० शशि कान्त

वर्तमान २०वीं शताब्दी के दूसरे दशक में प्रायः ८०० वर्षों के अन्तराल के बाद दिगम्बर मुनियों का पुनः प्रादुर्भाव हुआ। परन्तु जिस रूप में ये साधु अपने आचार को प्रवृत्त और प्रचारित कर रहे हैं वह कितने ही मामलों में श्रमण के उस आदर्श के अनुरूप नहीं है जिसकी पूजनीयता की अवधारणा वैचारिक दृष्टिकोण से जैन धर्म में है। ऐसे बहुत से प्रकरण राष्ट्रीय समाचार पत्रों एवं अन्य प्रचार मीडिया के माध्यम से प्रकाश में आते रहे हैं जो इस संस्था के वर्तमान परिस्थितियों में औचित्य पर प्रश्न-चिन्ह लगाते हैं। इस सम्बन्ध में समाज का प्रबुद्ध वर्ग प्रायः दिगम्बर वेशी श्रमणों के पुनः प्रादुर्भाव के समय से ही चिन्तित और मुखर भी रहा। पं० जुगल किशोर मुख्तार, पं० नाथूराम प्रेमी, पं० दरबारी लाल न्यायतीर्थ और पं० कैलाश चन्द्र सिद्धान्त-शास्त्री सरीखे प्रतिष्ठित विद्वान श्रमण संस्था के यथोचित संस्कार के प्रति सचेतक रहे। एक न्यायिक जांच आयोग का गठन भी समाज द्वारा किया जाना अपेक्षित हो गया, और पुलिस संरक्षण में मुनिश्री का पलायन भी सुर्खियों में आने लगा। आये दिन नये तीर्थों का प्रादुर्भाव हो रहा है और तिल-तुष मात्र परिग्रह से विरत कहे जाने वाले मुनि-आर्यिका करोड़ों-अरबों रुपये की सम्पत्ति का संग्रह नये-नये तीर्थों की तथा अन्य परियोजनाओं की स्थापना के माध्यम से कर रहे हैं। समाज का चिन्तनशील वर्ग इसके प्रति क्षुब्ध भी है, और अब तो शास्त्रि-परिषद व विद्वत् परिषद के विद्वान भी अपना आक्रोश व्यक्त करने लगे हैं।

न भूतो न भविष्यति : तीस-चौबीसी मन्दिर के प्रतिष्ठा महोत्सव के बाद अब आगामी १ जनवरी, २००० ई०, को दिल्ली में लाल किले पर, समाज के करोड़ों रुपयों का अपव्यय करके, "अहिंसा महाकुम्भ" के नाम से एक नये तमाशे का आयोजन किया जा रहा है। इस तमाशे का आयोजन एक युवा मुनिश्री कर रहे हैं जो

कीमती चश्मा धारण करते हैं और अज-श्मश्रु (फ्रेंच-कट दाढ़ी) से युक्त अपनी मुखाकृति का प्रदर्शन करते हैं तथा नाटकीय अन्दाज में ध्वनि प्रसारण और मुद्रा अभिनय करते हैं। वह युवा हैं, अपने को सुन्दर रूप में प्रदर्शित करने के शौकीन हैं, और उनमें प्रचार-प्रसिद्धि प्राप्त करने की अदम्य आकांक्षा के साथ ही अभिनय की भी अद्भुत क्षमता है—जो सब गुण एक सफल अभिनेता के लिये, और शायद राजनेता के लिये भी, तो अभीष्ट हैं, परन्तु दिगम्बर श्रमण साधु के रूप में अवांछित ही नहीं वरन् हेय हैं। कुछ भक्तों द्वारा फीस देकर जी टी० वी पर उनका सजीव प्रसारण भी कराया गया। श्रमणाचार की किस आचार संहिता से यह समर्थित है, यह अभी अज्ञात है। वह अपने को एक राजनैतिक सन्त के रूप में भी प्रचारित करते है। यह सब किस अपरिग्रह और वीतरागता का द्योतक है ?

दिगम्बर साधु के वेश में श्रमणाचार के प्रतिकूल इस प्रकार के आचरण पर प्रतिबन्ध लगाया जाना आवश्यक है। **शोधादर्श**-३८ में हमने अपने लेख 'समाज दर्शन' में इस सम्बन्ध में सचेत किया था और डा० (ब्र०) मनोरमा जैन ने भी अपनी शैली में 'आत्म शोधन' में श्रमणाचार की विवेचना की थी। "अहिंसा महाकुम्भ" नामक तमाशे में समाज के करोड़ों रुपये के अपव्यय को रोकने के लिये दिगम्बर जैन विद्वानों की प्रतिनिधि संस्था शास्त्रि-परिषद व विद्वत् परिषद के विद्वानों द्वारा समाज को तुरन्त सचेत किये जाने की आवश्यकता है। यदि समाज अहिंसा के सिद्धान्त के प्रति वास्तव में प्रतिबद्ध है तो जो करोड़ों रुपयों का अपव्यय इस तमाशे के माध्यम से होने जा रहा है उस राशि को संचित कर एक ट्रस्ट या फाउन्डेशन बना दी जाये जिसके माध्यम से जीव दया के रचनात्मक कार्य किये जा सकें। उक्त मुनिश्री यदि राजनैतिक सन्त या अभिनय कला में प्रवीण नायक ही होना चाहते हैं तो समाज द्वारा उन्हें सादर श्रमणवेश त्याग कर राजनीति या अभिनय जगत में विधिवत प्रवेश के लिये प्रेरित किया जाना चाहिये।

हमें विस्मय है कि विद्वद्वर्ग बालाचार्य भट्टारक प्रकरण से तो आन्दोलित है परन्तु श्रमण संस्था को उपहासास्पद बनाये जाने के

इस कृत्य पर चुप्पी साधे हैं। भारतीय जैन मिलन, दिगम्बर जैन महासमिति और दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा से तो किसी सुधारात्मक व तर्कसम्मत कार्यवाही की अपेक्षा कदाचित् नहीं की जा सकती परन्तु अपने को प्रगतिशील व सुधारवादी प्रचारित करने वाली दिगम्बर जैन परिषद भी इस सम्बन्ध में मौन है। जैनत्व की रक्षा को समर्पित परिषद के १३-१४ नवम्बर को सम्पन्न हीरक जयन्ति अधिवेशन में विचारार्थ तद्विषयक प्रस्ताव हमने परिषद के अध्यक्ष, महासचिव-द्वय व अधिवेशन संयोजक को भेजा था परन्तु किसी ने उसकी प्राप्ति की सूचना देना भी उचित नहीं समझा, जिससे यह भासित हुआ कि कदाचित वे भी मूढ़ता के बहाव में बहते चलने को ही श्रेयस्कर समझते हैं। आचार्य वृन्द भी जिस प्रकार अन्य कदाचार व शिथिलाचार के मामलों में मौन धारण किये हैं, इस तमाशे को भी अपनी मौन और मुखर सहमति दे रहे हैं। अवश्य ही यदि संयमभूषणमति प्रकरण के वाणी-भूषण सन्मतिसागर, क्षेमश्री प्रकरण के कुन्थुसागर, कलकत्ता और मुजफ्फरनगर से पुलिस संरक्षण में पलायन करने वाले सुधर्मसागर और महावीर स्वामी का जीवन्त अभिनय करने वाले पुष्पदन्तसागर भक्तों की श्रद्धा के पात्र बने रह कर जैन धर्म की प्रभावना (?) में लगे रह सकते हैं तो बिचारे तरुणसागर भी यदि राजनीति और अभिनय के माध्यम से ऐसा कर रहे हैं तो समाज को क्यों आपत्ति हो ?

ऐसी स्थिति में क्या जैनत्व की रक्षा हो सकती है, यह एक चिन्तनीय प्रश्न है। इस सब का एक भयावह परिणाम यह अवश्य हो सकता है कि जिस प्रकार 'रेड इण्डियन' को अमेरिका में एक सुरक्षित प्रजाति (Protected Species) के रूप में मनोरंजन, कौतूहल और नृशास्त्रीय अध्ययन के लिए संरक्षित किया जाता है, भारतीय धर्म-दर्शन का उपहास करने के लिए दुनिया वाले 'दिगम्बर जैन मुनि' को भी एक विशिष्ट प्रजाति के रूप में संरक्षित करने के लिये रुचि दिखाने लगें। जैन धर्म के अनुयायियों और अनुरागियों के लिये स्पष्ट ही २१वीं सदी में यह एक त्रासदिक स्थिति होगी। ★

अभिनन्दन

श्री अजित प्रसाद जैन, प्रधान सम्पादक, **शोधादर्श, सम्मानित**

२० नवम्बर, १९९९, को अजमेर में **शोधादर्श** के प्रधान सम्पादक **श्री अजित प्रसाद जैन** को जैन पत्रकारिता में उत्कृष्ट योगदान हेतु **आचार्य विमल सागर (भिण्ड) श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। साथ ही **डा० रतनचन्द्र जैन, भोपाल**, को उनके ग्रन्थ 'जैन दर्शन में निश्चय और व्यवहार नय : एक अनुशीलन' पर **आचार्य शांतिसागर छाणी स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार, पं० शिव चरन लाल जैन, मैनपुरी**, को जिनवाणी की प्रभावना हेतु **आचार्य सूर्यसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार, श्री रामजीत जैन, एडवोकेट ग्वालियर**, को उनकी पुस्तक 'गिरनार महात्म्य' के सन्दर्भ से **आचार्य सुमतिसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार**, और डा० कस्तूरचन्द्र जैन 'सुमन', **श्री महावीरजी**, को **मुनि वर्द्धमानसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार** से सम्मानित किया गया, तथा सराक क्षेत्र में उत्तम कार्य करने के लिये सराकोत्थान उप समिति, गाजियाबाद, को रु० २५०००/- का पुरस्कार प्रदान किया गया। सम्मान समारोह पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज के सानिध्य में सम्पन्न हुआ और सांसद प्रो० रासा सिंह रावत, मुख्य अतिथि, ने सम्मान समर्पित किये तथा सम्मानित विद्वानों को सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की भावना को बल देने के लिए बधाई दी। वर्ष १९९९ से श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ, ने नियमित रूप से पाँच वार्षिक पुरस्कार प्रदान करने का निश्चय किया था जिसके अन्तर्गत प्रत्येक पुरस्कृत विद्वान को ३१,०००/- रुपये की नगद राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति पत्र से समारोह पूर्वक सम्मानित किया जाए। श्री योगेश

कुमार जैन, अध्यक्ष, प्राच्य श्रमण भारती, खतौली, प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन, अध्यक्ष, अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद, फिरोजाबाद, डा० नलिन के० शास्त्री, कुलसचिव, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, और डा० अनुपम जैन, इन्दौर, के ४-सदस्यीय निर्णायक मंडल ने १३७ विद्वानों में से उपरोक्त ५ विद्वानों का वर्ष १९९९ के पुरस्कार-सम्मान के लिये चयन किया था। इस योजना के अन्तर्गत अब तक १६ विद्वान (१९९७ तक ६, १९९८ में ५ और १९९९ में ५) सम्मानित किये गये।

क्षीण स्वास्थ्य के कारण ८१-वर्षीय ज्ञान एवं अनुभव वृद्ध श्री अजित प्रसाद जी सम्मान समारोह में भाग नहीं ले सके और उनका सम्मान, निर्णायक मण्डल के अध्यक्ष प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन के माध्यम से उन्हें समर्पित किया गया। **शोधादर्श** में उनके स्पष्टवादी सटीक और निर्भीक अग्रलेखों तथा समाचार विमर्श ने जैन पत्रकारिता जगत में विशेष सम्मान अर्जित किया है।

श्रीमती अल्पना जैन, ग्वालियर, को उनके शोध-प्रबन्ध **जैन धर्म एवं गीता में कर्म का सिद्धांत—एक समाज शास्त्रीय तुलनात्मक विवेचन** पर जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, ने पी-एच०डी० उपाधि प्रदान की।

साध्वी साधना जी, नई दिल्ली, को **हिन्दी साहित्य और दर्शन को आचार्य सुशील कुमार जी के योगदान** पर महात्मा गांधी विश्वविद्यालय, वाराणसी, ने पी-एच०डी० उपाधि प्रदान की।

पं० जयकुमार एन० उपाध्ये, नई दिल्ली, को **प्राकृत साहित्य में वर्णित ज्योतिष का आलोचनात्मक परिशीलन** पर सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, ने पी-एच०डी० उपाधि प्रदान की।

श्रीमती सुशीला जैन सालगिया, प्राचार्या, क्लाथ मार्केट कन्या विद्यालय, इन्दौर, को देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर, द्वारा **जैन विषय-वस्तु से सम्बद्ध आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में सामाजिक चेतना** विषयक शोध-प्रबन्ध पर पी-एच० डी० उपाधि प्रदान की गई और १९ सितम्बर को ग्रन्थ का विमोचन भी डा० भरत छपरवाल द्वारा किया गया।

प्रो० कल्याणमल लोढ़ा को लन्दन में आयोजित विश्व हिन्दी सम्मेलन में १८ सितम्बर को भारत की विदेश राज्य मन्त्री श्रीमती वसुन्धरा राजे द्वारा शाल एवं स्मृति-चिन्ह प्रदान कर सम्मानित किया गया।

श्री कैलाश जैन मड़वैया (भोपाल) को हिन्दी दिवस की ५०वीं वर्षगांठ पर प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने "साहित्य वारिधि" सारस्वत सम्मान से अलंकृत किया।

लोक सभा में जैन समाज के **श्री सुन्दर लाल पटवा** (भाजपा), श्री वी० धनन्जय कुमार (भाजपा), श्री पुष्प जैन (भाजपा), श्री नरेश पुंगलिया और श्री दिलीप गांधी, सांसद निर्वाचित हुए। **श्री सुन्दर लाल पटवा** राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन सरकार में कैबिनेट मन्त्री बनाये गये और उन्हें ग्रामीण विकास विभाग सौंपा गया तथा **श्री वी० धनन्जय कुमार** को राज्य मन्त्री, वित्त विभाग, बनाया गया। राज्य सभा में जैन सांसद सम्प्रति डा० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, श्री राघव जी और श्री विजय दरड़ा हैं।

१८ जुलाई को मोराजी सागर (म०प्र०) में मूर्धन्य विद्वान **डा० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य** को उनकी अद्वितीय साहित्य साधना एवं आगम विवेचना के लिये **श्री गोम्मटेश्वर विद्यापीठ प्रशस्ति पुरस्कार-१९९९** से सम्मानित किया गया।

डा० रमेश चन्द्र जैन (बिजनौर) को हरिभद्रसूरि कृत 'समराइच्चकहा' के हिन्दी अनुवाद पर ९ अक्टूबर को उदयपुर में **स्व० चम्पालाल सॉड स्मृति पुरस्कार** प्रदान किया गया। २६ अक्टूबर को उन्हें अलवर में भी उनकी साहित्यिक सेवाओं हेतु **महाकवि ज्ञानसागर साहित्य पुरस्कार** से सम्मानित किया गया और उनकी पुस्तक **सुधासागर हिन्दी-अंग्रेजी जैन शब्द कोश** का विमोचन भी हुआ।

पर्यूषण पर्व पर चेन्नई में **श्री नीरज जैन** को उनकी मोहक प्रवचन शैली रेखांकित करने हेतु 'वाणी-भूषण' उपाधि से अलंकृत किया गया।

२६ फरवरी १९९९ को क्षुल्लक **स्वस्ति श्री हेम कीर्ति स्वामी** के रूप में दीक्षित, २९-३-१९७० को जन्मे श्री अरविन्द हेगड़े,

एम० ए०, का २९ अगस्त को मूडबिद्री जैन मठ के नूतन भट्टारक के रूप में पट्टाभिषेक किया गया।

दिगम्बर जैन महासमिति के रजत जयन्ती वर्ष में इन्दौर में ३० अक्टूबर को समाज निर्माण एवं उसके रचनात्मक विकास में दिये जा रहे विशिष्ट योगदान के लिये 'जैन मित्र' (सूरत) के सम्पादक **श्री शैलेष जैन कापड़िया**, 'दिशाबोध' (कलकत्ता) के सम्पादक **डा० चिरंजी लाल जैन बगड़ा**, 'जैसवाल जैन दर्पण' (आगरा) के प्रधान सम्पादक **श्री जगदीश प्रसाद जैन**, 'प्राकृत विद्या' (दिल्ली) के संपादक **डा० सुदीप जैन** एवं 'सन्मति' (मराठी) (कोल्हापुर) के सम्पादक **श्री माणिकचन्द जयवंतसा भिसीकर** को श्रीफल, प्रशस्ति, प्रतीक चिन्ह तथा ५०००-०० की नगद राशि से सम्मानित किया गया।

उपरोक्त सभी महानुभावों का **शोधादर्श** परिवार उनकी उपलब्धि पर अभिनन्दन करता है। ★

समाचार विविधा

सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री स्मृति व्याख्यानमाला

श्री गणेशवर्णी दिगम्बर जैन संस्थान नरिया, वाराणसी, में २ व ३ अक्टूबर, १९९९, को आयोजित चतुर्थ व्याख्यानमाला के अन्तर्गत मैसूर एवं मद्रास विश्वविद्यालय में जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग के पूर्व अध्यक्ष एवं सुप्रसिद्ध विद्वान **प्रो. एम. डी. वसन्तराज** के **गुरुपरम्परा से प्राप्त जैनागम** विषय पर तीन व्याख्यान हुए। **भारत कला भवन**, का० हि० वि० वि०, के पूर्व निदेशक प्रो० **रमेश चन्द्र शर्मा** ने अध्यक्षता की।

क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णी स्मृति व्याख्यान

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर में क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णी स्मृति व्याख्यान के रूप में १९ अगस्त को वैष्णव वाणिज्य महाविद्यालय के प्राध्यापक एवं अर्थ-शास्त्री प्रो० उदय जैन ने **हिन्दू एवं जैन आर्थिक चिन्तन : सन्दर्भ वर्तमान परिप्रेक्ष्य** विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए, कहा कि भगवान महावीर का अपरिग्रह ही विश्व का सर्वश्रेष्ठ अर्थशास्त्र है। प्रमुख अतिथि धर्मस्थल (कर्नाटक) के

धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र हेगड़े थे। संस्थाध्यक्ष श्री देवकुमार सिंह कासलीवाल ने उन्हें शाल, श्रीफल, स्मृति चिन्ह व माल्यार्पण द्वारा सम्मानित किया। सभा की अध्यक्षता पूर्व न्यायमूर्ति श्री एस० के० जैन ने की और उन्होंने क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णी के आदर्श जीवन पर सारगर्भित प्रकाश भी डाला।

JAINA का कन्वेंशन

जुलाई २ से ५ को फिलाडेलफिया (यू०एस०ए०) में जैन एसोसियेशन आफ इन्डियन्स आफ नार्थ अमेरिका (JAINA) का दसवां द्वि-वार्षिक कन्वेंशन सम्पन्न हुआ। प्रथम कन्वेंशन १९८१ में लास एन्जेल्स में हुआ था। अध्यक्ष डा० धीरज शाह के अनुसार अमेरिका में प्रवासी जैनों के सामाजिक सम्पर्क के लिये JAINA के कन्वेंशन आवश्यक हैं।

मथुरा के जैन स्तूप एवं कंकाली टीले के सांस्कृतिक वैभव पर संगोष्ठी

१५-१६ अक्टूबर को अजमेर में उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी के सानिध्य में मथुरा के जैन स्तूप एवं कंकाली टीले से प्राप्त पुरावशेषों के सन्दर्भ में एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर, द्वारा किया गया। संगोष्ठी में प्रो० रमेश चन्द्र शर्मा (वाराणसी), जो मथुरा संग्रहालय के निदेशक भी रह चुके हैं, ने एक ऐसी प्रतिपत्ति प्रस्तुत की जिससे अधिकांश विद्वानों को विस्मय हुआ। श्री कुन्दन लाल जैन, दिल्ली, ने सूचित किया है कि प्रो० शर्मा ने 'वोद्व' को 'बौद्ध' सूचित कर कंकाली टीले से प्राप्त जैन स्तूप के अवशेषों को सन्दिग्धतः बौद्ध स्तूप के अवशेष प्रतिपादित किया। यह वास्तविकता नहीं है। संवत् ७९ के पादपीठ लेख में स्पष्ट रूप से 'वोद्वे थुपे देवनिर्मिते' पढ़ा जाता है और यहां 'वोद्वे' का अर्थ 'वृद्ध' (प्राचीन) या 'वृहद' (विशाल) से है, न कि 'बौद्ध' से।

आचार्य जिनसेन कृत आदिपुराण पर संगोष्ठी

२४-२६ अक्टूबर को अलवर में मुनिश्री सुधासागर जी के सानिध्य में आदिपुराण पर संगोष्ठी हुई जिसमें ७० विद्वानों ने भाग

लिया। डा० फूलचन्द जैन 'प्रेमी' (वाराणसी) संयोजक थे। लखनऊ से डा० वृषभ प्रसाद जैन और डा० विजय कुमार जैन ने भाग लिया।

डा. हीरा लाल जैन के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर संगोष्ठी

अजमेर में २१ से २३ नवम्बर को उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी के सानिध्य में **षट्खण्डागम** आदि ग्रन्थों के सम्पादक महान प्राच्य-विद्याविद् डॉ० हीरालाल जैन के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर संगोष्ठी डॉ० शुभचन्द जैन, अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैन विद्या विभाग, मैसूर विश्वविद्यालय, की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। ४० विद्वानों ने इसमें भाग लिया। संयोजक डॉ० भागचन्द 'भागेन्दु' ने बताया कि डॉ० हीरालाल द्वारा इस सदी में **षट्खण्डागम** ग्रन्थ के १६ भाग के अलावा २७ अन्य ग्रन्थों का लेखन व सम्पादन कर १४,००० पृष्ठों की विशाल शोध सामग्री प्राच्य विद्या जगत को प्रदान की गई। डा० नरेन्द्र कुमार जैन ने तीनों दिनों की संगोष्ठी का सार प्रस्तुत किया।

गीता-ज्ञान-आराधना "स्वतन्त्र" पारमार्थिक न्यास की स्थापना

गंज बासोदा में 'जैन मित्र'' के भूतपूर्व यशस्वी सम्पादक एवं समाज सुधारक स्व० पं० ज्ञानचंद्र जी जैन 'स्वतंत्र' की नवमी पुण्य तिथि पर उनकी स्मृति में परिवार जनों ने एक लाख रुपये के ध्रौव्य फण्ड से उक्त पारमार्थिक न्यास की स्थापना की। 'स्वतंत्र' जी की विदुषी पुत्री डॉ० आराधना जैन ने कहा कि निर्धन एवं पात्र छात्रों को छात्रवृत्ति, विधवाओं एवं अनाथों को सहयोग, एवं विद्वानों का सम्मान तथा ऐसे ही अन्य कार्य करना न्यास के उद्देश्य हैं।

जापान में अन्तर्राष्ट्रीय गणित-इतिहास सम्मेलन

मायेबाशी विश्वविद्यालय, जापान, में सम्पन्न चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय गणित-इतिहास सम्मेलन में 'जैन ग्रन्थों में शून्य की अवधारणा' पर **डा० नन्द लाल जैन, रीवा** ने शोध पत्र प्रस्तुत किया। इस सम्मेलन में १६ देशों के ९० विद्वानों ने भाग लिया था।

पण्डित गोरेलाल शास्त्री स्मृति ग्रन्थ

१३ से १५ अगस्त को द्रोणगिरि में अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी एवं बुन्देलखण्ड गौरव पण्डित गोरेलाल शास्त्री स्मृति ग्रन्थ

का लोकार्पण समारोह सम्पन्न हुआ। देश के विभिन्न भागों से पधारे ५० विद्वानों द्वारा चार सत्रों में क्रमशः सिद्ध क्षेत्र द्रोणगिरि, बुंदेलखण्ड के जैन तीर्थ क्षेत्र, और इन तीर्थ क्षेत्रों की वास्तुकला एवं वास्तु विद्या पर चर्चा की गई। संगोष्ठी के संयोजक डॉ० भागचन्द्र 'भागेन्दु' थे। चतुर्थ सत्र में आचार्य श्री देवनन्दि महाराज ने डा० श्रेयांस कुमार एवं श्री कमल कुमार द्वारा सम्पादित पं० गोरे लाल शास्त्री स्मृति ग्रन्थ का लोकार्पण किया। इस अवसर पर उपस्थित अनेक मनीषियों ने पण्डित गोरे लाल जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला और बताया कि पण्डित जी ने उन परिस्थितियों में जब साधन सीमित थे, आवागमन कम था और डाकुओं से घिरा प्रान्त था, क्षेत्र की न केवल सुरक्षा ही की, अपितु उसका विकास भी किया।

स्व० मास्टर श्री राजधर जी जैन इटारसी की स्मृति में स्मारिका

प्राचीन संस्कार और आधुनिक चिन्तन के अनूठे सम्मिश्रण तथा साहित्य, संस्कृति, धर्म और समाज के लिये अपने ७६ वर्ष के जीवन में सतत् कार्यरत, मास्टर राजधर जी जैन इटारसी (ज० ११-११-१९२२, मृ० १२-८-१९९९) की स्मृति में प्रकाशनाधीन स्मारिका हेतु उनसे सम्बन्धित आलेख/काव्य प्रसून/सहयात्रा प्रसंग/संस्मरण/श्रद्धासुमन आदि डॉ० भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु', २८ सरस्वती नगर, दमोह ४७०६६१ (म०प्र०), के पते पर भेजे जायें।

पूज्य शशिभाई स्मृति जिनवाणी संरक्षण पुरस्कार

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर, ने भाई श्री शशिभाई जी की स्मृति में जिनवाणी संरक्षण पुरस्कार की वर्ष १९९९ से स्थापना की है। जिनवाणी के संरक्षण, प्रचार-प्रसार में अपना उत्कृष्ट योगदान प्रदान करने वाले विद्वानों/संस्थाओं को प्रत्येक दो वर्ष के अन्तराल में रुपये ५१,०००/- की नगद राशि, प्रशस्ति-पत्र, शाल व श्रीफल से सम्मानित किया जायेगा।

जैन विद्या विश्वकोश

कम्प्यूटर प्रोग्रामर जो Visual Basic एवं Multimedia

Designing में दक्षता रखते हैं, और अनुवादक जो हिन्दी से अंग्रेजी और अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद कर सकते हैं, अपनी अंशकालिक/मानद सेवायें उपलब्ध कराने के लिये प्रो० वृषभ प्रसाद जैन से सम्पर्क कर सकते हैं। यदि किसी सज्जन/संस्था के पास जैन-धर्मायतनों में गन्धर्वों के द्वारा गाये गए पूजन, भजन एवं पदों के पुराने ऑडियो कैसेट या रिकार्ड, जैन परम्परा से सम्बन्धित विभिन्न संस्कारों, उत्सवों के आयोजनों से सम्बन्धित वीडियो रिकार्डिंग की कैसेट, और जैन परम्परा से संबंधित तीर्थों, विशिष्ट मन्दिरों, गुफाओं, मूर्तियों, टोंकों, पूजाओं, विभिन्न पूजा-पाठों के माड़नों तथा विभिन्न प्रतीकों से सम्बन्धित विवरण एवं स्टिल फोटोग्राफी (रंगीन या काले-सफेद चित्रों में) उपलब्ध हों तो उसकी एक प्रतिलिपि उपलब्ध कराने के लिए जैन विद्या विश्वकोश संयोजकीय कार्यालय, बी-१/१३२, सेक्टर-जी, अलीगंज, लखनऊ-२२६०२४ से सम्पर्क कर लें।

गणेश प्रसाद वर्णी चित्र कथा

ब्र० अमरचंद जैन, श्री दि० जैन महावीर उदासीन आश्रम, पो०-कुण्डलपुर, दमोह (म० प्र०)-४७०७७३, ने सूचना दी है कि वह पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी की जीवन यात्रा और जीवन दर्शन पर रंगीन चित्रों के माध्यम से संवाद एवं संदेश द्वारा एक चित्रकथा प्रकाशित कर रहे हैं। यदि किन्हीं सज्जन/संस्था के पास पू० वर्णी जी के पुराने फोटो तथा प्रसंग/घटना संस्मरण या उस समय प्रकाशित समाचार की कटिंग, संस्थान का चित्र (जब आपके गांव में संस्था का शुभारम्भ उनकी उपस्थिति में हुआ हो) आदि हों तो वे इस संबंध में प्रकाशक से संपर्क कर लें।

आध्यात्मिक भजन/गीतों की आवश्यकता

टाइम्स ऑफ इण्डिया की एक शाखा 'टाइम्स म्यूजिक' द्वारा सभी धर्मों के आध्यात्मिक भजन एवं गीतों की कैसेट्स बनाई जा रही हैं। जैन भजनों व गीतों की कैसेट के लिए अध्यात्म से परिपूर्ण भक्ति गीत व भजन, जैसे द्यानतराय जी आदि कवियों द्वारा रचित, जिन किसी के पास भी उपलब्ध हों वे उसके सम्बन्ध में श्री

रमेशचंद्र जैन, टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली-११०००२ से सम्पर्क कर लें।

कर्नाटक में जैन धर्म

कन्नड भाषा में जैन धर्म पर साहित्य के लिए श्री ए० एन० चन्द्रकीर्ति, ७१३, चित्रभानु रोड, ई-एफ ब्लाक, कुवेम्पु नगर, मैसूर-५७००२३ से सम्पर्क किया जा सकता है। कर्नाटक और दक्षिण भारत में जैन धर्म से सम्बन्धित डा० एकाम्बरनाथन की Jainism in Tamil Nadu, डा० एच० पी० नागराजैया की Jina Parsva Temples in Karnataka, Early Gangas, और Later Gangas, तथा डा० कमला हमपना की Attimabbe and Chalukyas, भी उनसे उपलब्ध हो सकती हैं।

विदर्भ का जैन बुनकर (कोष्टी) समाज

श्री वामनराव चवने ने मराठी तीर्थंकर (जुलाई १९९९) में अवगत कराया है कि महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में अमरावती, यवतमाल और वर्धा जिलों के दस-बारह देहातों में वर्तमान जैनों द्वारा उपेक्षित एक जैन बुनकर समाज है जो लगभग छह-सात सौ वर्षों से आबाद है। इस समाज के लोगों में दिगम्बर जैन आम्नाय में नितान्त श्रद्धा है। कुछ अभिलेखों तथा प्राचीन बर्तनो पर के उल्लेखों से यह समाज जसवाल (ढवल) जाति का है जो कपड़ों के बुनने और विक्रय का धंधा करती थी, इस कारण इसे जैन कोष्टी (मराठी में बुनकर को कोष्टी कहते हैं) कहा जाता था। वस्त्र-व्यवसाय के साथ-साथ कृषि का भी धंधा था। अमराबती जिले के नेरपिंगलाई (मोर्शि) में इस समाज के दिगम्बर जैन चैत्यालय में शक संवत् ११५४ (१२३२ ई०) की दिगम्बर जैन प्रतिमा है। एक दिगम्बर जैन चैत्यालय विरुण रोंघे, तह० चान्दूर-रेलवे, में तथा एक दि० जैन चैत्यालय बेंदोला खुर्द, तह० तिनसा, में भी है जहाँ जैन प्रतिमाएं लगभग छह-सात सौ वर्ष प्राचीन हैं, ऐसा उन पर उत्कीर्ण अभिलेखों से ज्ञात होता है। इस समाज के लोग भोले-भाले अज्ञानी थे और देहातों में रहने के कारण तथा आस-पास जैनेतरों की बस्ती होने के कारण

उन पर आगे चलकर हिन्दू धर्म का प्रभाव पड़ता गया और घरों में हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा होने लगी। किन्तु धर्म के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, आदि मूल व्रतों का पालन होता रहा। इनके अज्ञान का लाभ उठा कर 'महानुभाव' पन्थ के लोगों ने यह कह कर कि आपके और हमारे तत्त्व समान हैं उनमें से कुछ को महानुभाव पन्थ में दीक्षित कर लिया और उनके यहाँ दिगम्बर जैन प्रतिमा के साथ-साथ महानुभाव देव की पूजा भी होने लगी। महाराष्ट्र शासन के निर्णय ओबीसी-१-९४/पु०व० २३४/५११९क ५, दिनांक ७-१२-९४ के अन्तर्गत जैन कोष्टी समाज को विशेष पिछड़े वर्ग का दर्जा दिया गया है।

मौरीग्राम बूचड़खाने के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट में विशेष पिटीशन स्वीकृत

कलकत्ता (मौरीग्राम) में मुम्बई की अल्लाना कम्पनी द्वारा प्रस्तावित विशाल निर्यातमूलक बूचड़खाने के विरुद्ध गत चार वर्ष से इण्डियन वेजीटेरियन कांग्रेस, पूर्वांचल, के अध्यक्ष डा० चीरंजी लाल बगड़ा के मार्ग दर्शन एवं नेतृत्व में राष्ट्रव्यापी विरोध आंदोलन चलाया जा रहा है। कलकत्ता उच्च न्यायालय में कम्पनी के पक्ष में फैसला आ जाने पर डॉ० बगड़ा ने इस वर्ष २० सितम्बर को सुप्रीम कोर्ट में S.L.P. (C) No. 14833/1999 दाखिल की थी जिसकी प्रथम सुनवाई १५ अक्तूबर को न्यायमूर्ति श्री एम० जे० राव एवं श्री सन्तोष हेगड़े की खण्डपीठ कोर्ट नं० ९ में हुई। तीव्र प्रतिवाद के बावजूद सरकारी जमीन के दुरुपयोग से नाराजगी प्रकट हुए दोनों ही माननीय न्यायाधीशों ने उक्त SLP को स्वीकृत करते हुए कम्पनी को Status Quo बनाए रखने के लिए कहा एवं उन्हें ६ सप्ताह में अपनी जवाबी दलील दाखिल करने का आदेश दिया तथा ९ सप्ताह पश्चात् केस को पुनः सुनवाई हेतु पंजीकृत करने का भी निर्देश दिया।

शाकाहार का प्रचार कैसे हो

इण्डियन वेजीटेरियन कांग्रेस, पूर्वांचल, के अध्यक्ष, शाकाहार पर अमेरिका से पी-एच०डी० उपाधि प्राप्तकर्ता, 'दिशाबोध' और

'वेजीटेरियन गाइड' नामक मासिक पत्रिकाओं के प्रकाशक डा० चीरंजी लाल बगड़ा ने सितम्बर में इन्दौर के दैनिक 'भास्कर' के संवाददाता से शाकाहार के सम्बन्ध में चर्चा के दौरान यह विचार व्यक्त किये कि भारत की अपेक्षा विदेशों में शाकाहार को अपनाने वालों की संख्या अधिक है। विदेशों में युवा वर्ग शाकाहार को अपनाने हेतु उद्यत है। हमारे यहाँ उम्र के अन्तिम पडाव पर ही शाकाहार के प्रति प्रेम उमड़ता है। भारत में शाकाहार पर 'निठल्ला चिंतन' अधिक होता है। शाकाहार और गौरक्षा के मुद्दे को जब तक धर्म के घेरे से बाहर नहीं किया जाता और आम देशवासियों को शाका-हार के वैज्ञानिक पहलुओं की जानकारी नहीं दी जाती तब तक चाहे जितने प्रयास कर लें, सम्पूर्ण देश को शाकाहारी बनाने का सपना पूरा होने वाला नहीं। जब तक शाकाहार को पाठ्यक्रम में शामिल नही किया जाता तब तक युवा पीढ़ी को शाकाहारी नहीं बनाया जा सकता। शाकाहार आन्दोलन को धर्म के घेरे से मुक्त कराना भी जरूरी है वरना शाकाहार आन्दोलन को अन्य धर्मावि-लम्बियों को ठेस पहुंचाने वाले मुद्दे के रूप में भी देखा जायेगा। देश में गौ रक्षा आन्दोलन सफल नहीं होने का भी यही कारण है। एक वर्ग की भावना गाय से जुड़ी है तो दूसरा वर्ग इसे भावनात्मक खिलवाड़ की दृष्टि से लेता है। जब तक गाय धर्म और राजनीति से मुक्त नहीं होती तब तक गौ हत्या को भी नहीं रोका जा सकता। गाय को राजनीति से नहीं अर्थनीति से जोड़ा जाना चाहिए।

मांस रहित दिवस (Meatless Day)

२५ नवम्बर को साधु टी० एल० वासवानी की १२०वीं जन्म जयन्ति पर उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री श्री राम प्रकाश गुप्त ने प्रदेश भर में पशुवधशालाओं की बन्दी के साथ ही मांस की बिक्री और भोजनालयों में मांस परोसे जाने पर भी पाबन्दी के आदेश दिये।

कारगिल युद्ध के सन्दर्भ से केन्द्रीय सैनिक कल्याण निधि में और उड़ीसा में चक्रवात पीड़ितों की सहायतार्थ निधि में योगदान

सैनिक कल्याण निधि में जैन मिलन, लखनऊ, ने रु०

१२,२००/-, श्री नेमि चन्द जैन ने भगवान महावीर सेवा केन्द्र की ओर से रु० ५०००/-, श्री महेश चन्द्र जैन, शंकर नगर, ने रु० ५०१/-, श्री रमा कान्त जैन ने रु० १८००/- डा० ज्योति प्रसाद जैन व श्रीमती अनन्त माला की स्मृति में, और डा० शशि कान्त ने रु० १५००/- श्री रतनचन्द व श्रीमती विद्यावती जैन की स्मृति में, प्रदान किये।

उड़ीसा चक्रवात सहायता निधि में भी श्री रमा कान्त जैन ने रु० ६०१/- और डा० शशि कान्त ने रु० ६२१/- उपरोक्तानुसार प्रदान किये।

श्री दिगम्बर जैन शाश्वत तीर्थराज सम्मेद शिखर ट्रस्ट

ट्रस्ट केवल शिखर जी की सुरक्षा और विकास में ही धन का उपयोग करता है, अन्य कार्यों में नहीं। यह ट्रस्ट समूचे दिगम्बर जैन समाज के सहयोग से संचालित है। ट्रस्ट को दिया गया दान आयकर की धारा ८०जी के अन्तर्गत कर मुक्त है। ट्रस्ट के आय-व्यय का ब्यौरा तीर्थक्षेत्र कमेटी की मासिक पत्रिका "तीर्थबन्दना" में प्रकाशित होता है। ट्रस्ट का कोई प्रचारक चन्दा एकत्र करने नहीं भेजा जाता है। सहयोग राशि श्री दिगम्बर जैन शाश्वत तीर्थराज सम्मेद शिखर ट्रस्ट, वीर सेवा मन्दिर, २१, दरिया गंज, नई दिल्ली-११०००२ को ही सीधे भेजी जाये।

पता परिवर्तन

प्रा० सौ० लीलावती जैन, सम्पादिका, धर्ममंगल, का पता जलगांव से बदल कर अब निम्नवत हो गया—५, दिशांत अपार्टमेंट, दीपा हाउसिंग सोसायटी, संघवी नगर, औंध, पुणे-४११००७ (महाराष्ट्र)।

शोक संवेदन

१४ अप्रैल, १९९९, को सहारनपुर में ७६-वर्षीय सुश्रावक, वस्त्र व्यापारी श्री हुकम चन्द जैन का स्वर्गवास हो गया।

१२ अगस्त को इटारसी (मध्य प्रदेश) में ७६-वर्षीय शिक्षा-मनीषी समाजसेवी सुचिन्तक मास्टर राजधर जैन का देहावसान हो गया।

१४ अगस्त को खुरई में सुप्रसिद्ध 'भक्तामर स्तोत्र' के मर्मज्ञ **पं० कमल कुमार शास्त्री 'कुमुद'** का स्वर्गवास हो गया।

२० अगस्त को इन्दौर में समाजसेवी, धर्मनिष्ठ, जैन संस्कृति एवं दर्शन के व्याख्याता और बोध कथा लेखक ८३-वर्षीय **श्री मोती लाल सुराना** पंचतत्व में विलीन हो गये।

२८ अगस्त को खम्भात (गुजरात) में ७४-वर्षीय **आचार्यश्री कान्तिऋषि** ने संथारापूर्वक नश्वर देह त्याग दी। इन्होंने ४५ वर्ष की वय में करोड़ों का व्यापार और भरा-पूरा परिवार छोड़ कर दीक्षा अङ्गीकर की थी।

२९ सितम्बर को दिल्ली में 'जैन विवाह पत्रिका' के सम्पादक समाजसेवी वयोवृद्ध **श्री हंस कुमार जैन** नहीं रहे।

७ अक्टूबर को लखनऊ में २२-वर्षीय **अभिषेक जैन** (पुत्र श्री राकेश जैन) का सड़क दुघर्टना में असामयिक निधन हो गया।

२१ अक्टूबर को दिल्ली में ९०-वर्षीय सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं भारतीय ज्ञानपीठ के वर्षों तक नियामक रहे **श्री लक्ष्मी चन्द जैन** का स्वर्गवास हो गया।

२७ अक्टूबर को उदयपुर में हुक्म गच्छीय साधुमार्गी जैन संघ के ८वें पट्टधर ८०-वर्षीय जैनाचार्य **श्री नानालाल जी** का देवलोक गमन हो गया।

इसी अवधि में इलाहाबाद में पुरातत्त्वविद् **डा० सतीश चन्द्र काला**, वाराणसी में संस्कृत के वयोवृद्ध प्रकाण्ड विद्वान **आचार्य बलदेव उपाध्याय**, फर्रुखाबाद में भारतीय जैन मिलन के पूर्व अध्यक्ष **श्री दीप चन्द जैन**, और अमेरिका में लखनऊ विश्वविद्यालय के बोटेनी विभाग की पूर्व अध्यक्ष **डा० प्रेमवती** हमारे बीच नहीं रहे।

उपरोक्त सभी दिवंगत के प्रति शोधादर्श परिवार अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है और उनकी आत्मा की चिरशांति एवं सद्गति के लिये प्रार्थना करता है, तथा उनके स्वजनों के प्रति अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है। साथ ही माह अक्टूबर में उड़ीसा में भयानक चक्रवात के कारण आई दैवी आपदा

में भारी संख्या में हुए हताहतों के प्रति भी हार्दिक संवेदना प्रकट करता है।

आभार

जस्टिस एम० एल० जैन, नई दिल्ली, ने शोधादर्श को रु० ५००/- और श्री सुरेश चन्द्र जैन, मसूरी, ने रु० २००/- भेंट किये।

डा० (श्रीमती) ज्योति जैन, धर्मपत्नी डा० कपूर चन्द जैन, खतौली, ने श्री सम्मेदशिखर जी की यात्रा सानन्द सम्पन्न होने के उपलक्ष में शोधादर्श को रु० ५१/- भेंट किये।

श्री वीरेन्द्र कुमार जैन (अधिशासी अभियन्ता, उ० प्र० रा० वि० प०, गाजियाबाद) एवं श्रीमती सरोज जैन के सुपुत्र तथा श्री अजित प्रसाद जैन (प्रधान सम्पादक, शोधादर्श) के दौहित्र चि० विकास के नहान निवासी श्रीमती एवं श्री अनिल कुमार जैन की सुपुत्री सौ० शालिनी के साथ गाजियाबाद में १७ अक्टूबर को सम्पन्न पावन परिणय की वेला में श्री वीरेन्द्र कुमार जैन से शोधादर्श को भेंट स्वरूप रु० १०१/- प्राप्त हुए।

डा० (श्रीमती) सन्तोष जैन, सरीटास (अमेरिका), ने अपनी माताजी स्व० श्रीमती धनवती जैन की छठी पुण्यतिथि (४ नवम्बर) पर शोधादर्श को रु० १०१/- भेंट किये।

श्री ताराचन्द्र जैन अग्रवाल, पचेवर, ने श्रीमती कपूरी देवी व श्री पांचू लाल जैन के प्रपौत्र चि० राहुल के जन्म पर शोधादर्श को रु० ३६/- भेंट किये। ★

पाठकों की दृष्टि में

शोधादर्श का समीक्षात्मक पैनापन अद्वितीय है। जैनत्व की सुरक्षा और अस्मिता का संरक्षण और दिशाबोध सभी जैन पत्रिकाओं से अलग हटकर हैं। सभी आलेख स्तरीय तथा शोधपूर्ण होते हैं जो पाठकों में अभिरुचि जगाते हैं।

—डा० अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर

स्तम्भ 'गुरुगुण-कीर्तन', 'चिन्तन कण', 'विचार-विन्दु', 'साहित्य सत्कार', 'समाचार विमर्श', 'अभिनन्दन', 'समाचार विविधा' एवं 'पाठकों की दृष्टि में' **शोधादर्श** पत्रिका में चार चाँद लगाते हैं। समाचार विमर्श के अन्तर्गत आपकी निर्भीक टिप्पणियाँ 'कबीर' की याद दिलाती हैं। समाज सुधार का जो बीड़ा **शोधादर्श** ने उठाया है वह निरर्थक नहीं जाएगा। डा० शशि कान्त जी की कविता 'मैं कगार पर खड़ा' आज के समाज का सही चित्रण कर रही हैं तथा कवि की व्यथा झलक रही है। रमा कान्त जी के **गिलास आधा भरा है** की समीक्षा से उनके कवि हृदय का पता चलता है। श्री अजित प्रसाद जी द्वारा 'समाचार विमर्श' में उठाए गए विन्दु ध्यान देने योग्य हैं। आशा है समाज के कर्णधार इस पर विचार करेंगे। पुनश्च मेरी शुभकामनाएं है कि इतिहासविद् डा० ज्योति प्रसाद जी द्वारा प्रज्वलित यह ज्योति इसी प्रकार प्रकाश देती रहे।

—**डॉ० विजय कुमार जैन**, लखनऊ

शोधादर्श का ३८वां अंक मिला। इसमें प्रकाशित शोधगर्भ सामग्री से एक ओर जहाँ मेरा अभिनव ज्ञानोन्मेष होता है, वहीं दूसरी ओर पूर्वज्ञात बिषय की दोहराई भी हो जाती है। सचमुच, **शोधादर्श** जहाँ शोध के लिए आदर्श प्रस्तुत करता है, वहीं यह आदर्श शोध की दिशा का सही निर्धारण भी करता है। शुद्ध मुद्रण इसका अन्यत्र प्रायोदुर्लभ गुण है, जो गम्भीर लेखकों में भी, इस पत्रिका में छपने की आकांक्षा उद्वेलित करता है। इस अंक में प्रकाशित "कवि धनपाल-रचित 'सच्चरिउ महावीर उत्साह' " शीर्षक आलेख गर्ग जी जैसे शोध पुरुष लेखक की शोध प्रतिभा की श्रेष्ठता का सूचक है। किन्तु उनके द्वारा लिखित 'सच्चरिउ' की संस्कृत-छाया 'सत्यपुरीय' विचारणीय है। अपभ्रंश में 'उत्साह' होता है क्या ? इसके अतिरिक्त, डॉ० जगदीश चन्द्र जैन का पुण्य स्मरण साहित्येतिहास को समृद्ध करने वाला है। दिव्य ध्वनि बनाम स्याद्वाद वाला शास्त्रार्थ-प्रसंग भी रोचक है। पूरी पत्रिका में न तो कहीं अमूल है,

न ही अनपेक्षित है। सुन्दर में सब कुछ सुन्दर है।

—डा० श्रीरंजन सूरिदेव, पटना

स्पष्ट, निर्भीक, और जिनवाणी की मर्यादा में अक्षर चिन्तन आपका बेजोड़ है।

—प्रा० सौ० लीलावती जैन, पुणे

अभी शोधादर्श-३८ मिला। पुस्तक में कई लेख तो बार-बार पढ़ गया। सीधी-सहज भाषा में आपने बहुत कुछ और कम शब्दों में कह दिया है। 'अहिंसा महाकुम्भ' के सम्बन्ध में टिप्पणी बहुत ही महत्वपूर्ण है। करोड़ों का व्यय कर केवल मेला ही लगेगा, और कुछ नहीं।

—डा० महेन्द्र राजा जैन, इलाहाबाद

आपके सम्पादकीय और 'समाज दर्शन' लेखों में वेषमदी (ज्ञानमद-तपमद नहीं कहना चाहता) साधुवेषियों और धनमदी पागलों की करतूतों और योजनाओं पर खेद और व्यथा प्रगट करना यथार्थ है। समाज की स्थिति पर किंकर्तव्य-मूढ़ता का भाव आना भी यथार्थ है। खेद-व्यथा-असहायता का प्रकाशन तो दर्जनों की तिकड़ी (अविवेकी तथाकथित साधुवर्ग-पंडित वर्ग-श्रेष्ठी वर्ग) के उत्साह और शक्तिशालिता का वर्धक ही सिद्ध होता है। उनकी रेखा कट नहीं सकती है। हमें उसके मुकाबले में बड़ी रेखा खींचने का प्रयास करना होगा। मुनि अपने आप जैसे इसी शताब्दी में बढ़ गये हैं वैसे ही सामान्य आदमी की भक्ति नहीं पाएंगे तो संख्या कम हो जाएगी। जो करोड़ों रुपये अपव्यय हो रहे हैं—black money है, No. 2 है, भ्रष्टाचार है। धर्मभाव साधन में तो एक भी नये पैसे की आवश्यकता नहीं है। यह चैतन्य-अमूर्त-शक्त्-यात्मक सत्ता अनादि निधन नित्य है; आत्मानुभव ही राग-द्वेष-मोह की बीमारी की औषधि है। जो विद्वान् तपस्वी श्रेष्ठी का रूप पाकर भी इन रूपों के विपरीत आचरण कर रहे हैं—उनकी दशा शोचनीय है व दयनीय है।

—श्री सुखमाल चन्द्र जैन, नई दिल्ली

आपका सम्पादकीय अतीव प्रासंगिक है। सभी मुनिराज/आचार्य इस इस समय उपाधि प्रेमी हो गये हैं। जितनी उपाधियाँ मिलेंगी, जुड़ेंगी, उतनी अपनी महानता वे महसूस करते हैं। मानों वे उपाधियों को परिग्रह ही न जानते हों। जिस निरुपाधि पद स्वरूप अरिहन्त/सिद्ध पद की प्राप्ति हेतु मुनिराज/आचार्य साधना पथ पर चल पड़े हैं, उसकी साधना इन उपाधियों की होड़ में किस तरह ये साध सकेंगे, शंका है। इतना ही नहीं, करुणा भी आती है। तीस-चौबीसी मन्दिर के सम्बन्ध में आपका विचार-प्रधान संपादकीय निश्चित ही सभी क्रियाकांड के पक्षधरों को भी पुनर्विचार कराने वाला है। इस हेतु आप अभिनन्दन के पात्र हैं। इसी श्रृंखला की दूसरी कड़ी है **कामदेव मन्दिर** जो पृ० १९७ पर है। वह भी अतिशय सराहनीय है। ऐसे काम देव मन्दिरों का प्रचलन गलत परम्परा को जन्म देगा। फिर चक्रवर्ती मन्दिर, बलभद्र मन्दिर, या अन्य मुनि मन्दिर भी बनने लगेंगे। समाधि मन्दिर तो आचार्य श्री की प्रतिमा सहित बन ही चुका है। अन्यत्र भी कई प्रतिमायें मुनिराजों की उनके-उनके रूपों में विद्यमान हैं और पूजी जाती हैं—वह सब आधुनिक हैं तथा उनके जीवन काल की भी हैं। आपका निष्कर्ष कामदेव मन्दिर, समाधि मन्दिर, तथा तीस-चौबीसी मन्दिर की प्रतिष्ठा में भव्यता विषयक अतीव समायोचित तथा त्यागियों, मनीषियों, बिचारकों, सूज्ञों द्वारा विचार्य है। धर्ममंगल का साहस १-७-९९ के अंक से आपने सराहा है। वह सामर्थ्य भी सम्पादिका महोदय का ही है। मैं आपके इस मत से सहमत हूं कि शास्त्रि-परिषद, विद्वत् परिषद, महासमिति आदि समाज की गणमान्य संस्थायें क्यों सोने का नाटक निभा रही हैं ? क्यों वे एक मंच पर आ कर महासभा के प्रश्रय में चलने वाले इस अलगावपूर्ण तथा क्रियाकांडी आग्रह पर विरोध प्रदर्शित करने में सकुचाते हैं ? वे खुल कर विरोध प्रदर्शित कर जो आचार संहिता प्रचलित की है उसका पालन करायें। वैसे पूरा शोधादर्श हर पंक्ति में विचार प्रवण कराने वाला है।

—श्री मनोहर मारवडकर, नागपुर

५ अंक देख कर विश्वासपूर्वक लिख सकता हूं—आपने अनुसन्धानिक स्तर सुरक्षित रखा है। यह बहुत बड़ी उपलब्धि है।

—श्री चन्द्रकांत बाली, दिल्ली

वन्दनीय डॉ० ज्योति प्रसाद जी की कृपा को आप अक्षुण्ण रख रहे हैं।

—आचार्य गोपीलाल अमर, दिल्ली

आपका सम्पादकीय पढ़ा, यथोचित लगा। इस विषम विषय पर बहुत कुछ लिखा जा रहा है, लेकिन आयोजकों पर कोई असर नहीं बल्कि खर्चे और बढ़ रहे हैं और आयोग्य बन्धु पैसे के बल पर समाज में प्रतिष्ठित हो रहे हैं। इस सम्बन्ध में मेरा तो सुझाव है कि ऐसे आयोजनों की रिपोर्टिंग किसी भी पत्र-पत्रिका में नहीं होनी चाहिए। प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी या अन्य गुणीजनों को ऐसे किसी भी आयोजन में नहीं जाना चाहिए और दूसरों को भी रोकना चाहिए। जब इनकी चर्चाएं सीमित हो जायेंगी, तो शायद मजबूरी इन्हें आध्यातम की ओर खींचे। हमारे सन्त/साधु भी नाम चाहते हैं और इसी दृष्टि से आयोजकों को आशीष देते हैं, भौतिक शान-शौकत उन्हें अच्छी लगती है, यही कारण है कि इस वर्ग में शिथिलाचार बढ़ता जा रहा है और हमारी संस्कृति का ह्रास हो रहा है। जैन ख्याति धूल-धूसरित हो रही है। शोधादर्श आद्योपांत पढ़े बिना चैन नहीं मिलता, आपने वस्तुतः सही लिखा है कि जैन धर्म अपनी पहचान कम कर हिन्दू धर्म की तर्ज पर बढ़ रहा है यथा कामदेव मन्दिर, बिमल समाधि या मन्दिर इसके प्रतीक हैं। ऐसे में आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज की घोषणा बहुत ही सटीक है। आज के अन्य मुनि वृन्द को इसे अपनी आत्मा में उतारना चाहिये।

—श्री सुन्दर सिंह जैन, दिल्ली

कुछ लेख तो हृदय को छू गये यथा सम्पादकीय, पुनीत स्मरण, आत्म शोधन, चिन्तन कण, एवं समाज दर्शन। समाज की स्थिति एवं सुधार हेतु सुझाव उल्लेख योग्य हैं।

—डॉ० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, लखनऊ

'न भूतो न भविष्यति' सम्पादकीय बड़ा चुटीला और हथौड़े की चोट सा लगा पर इस धृष्ट जैन समाज को क्या कहिए कोई असर ही नहीं होता। इसके पीछे दो नम्बर का पैसा और मुनि महाराजों के शुभाशीष ही हैं। एक समय था जब छोटी सी गलती पर रोटी-बेटी बन्द हो जाती थी और जाति बहिष्कार जैसा दण्ड मिलता था। आज साधु और श्रावक दोनों ही मिल कर समाज को गड्ढे में धकेल रहे हैं, इन पर नियन्त्रण पाने के लिए कुछ कारगर उपाय ढूंढ़ना होगा।

—श्री कुन्दन लाल जैन, दिल्ली

सम्पादकीय **तीस-चौबीसी मन्दिर का प्रतिष्ठा महोत्सव** विषयक अत्यन्त सारगर्भित है। हमारे समाज को सोच-विचार कर जैन धर्म के सही स्वरूप की प्रभावना करना चाहिए। प्रदर्शन मिथ्यात्व से दूर रहकर सच्चे वीतरागी धर्म की प्रभावना ही लक्ष्य होना चाहिए। किन्तु हमारा समाज दिग्भ्रमित होकर मान प्रदर्शन, पद, पदवी का ही पोषण कर रहा है। वर्तमान विश्व में जैन समुदाय से एकता, सौहार्द, सद्भावना, सहयोग समर्थित जागृति, दहेज उन्मूलन, रूढियों को तोड़ने, व्यसन-मुक्ति आदि के प्रयत्न की आवश्यकता है। कृपया लेखनी से जगाते रहें।

—श्री प्रेम कुमार जैन, विदिशा

इतिहास-मनीषी डॉ० ज्योति प्रसाद जैन ने **शोधादर्श** पत्रिका के माध्यम से साहित्य, समाज, संस्कृति, धर्म एवं शोध के क्षेत्र में बड़ा प्रेरणास्पद वातावरण बनाया हैं। उनकी प्रेरणा का लाभ जैन अजैन विद्वानों ने भरपूर उठाया। जैन इतिहास के क्षेत्र में भी उनका अवदान महत्त्वपूर्ण है। सबसे बड़ी बात मैंने जो देखी, वह यह थी कि इतिहास-मनीषी ने आम्नाय के विरुद्ध गलत विचारों का सदैव खण्डन किया। जैन वास्तुकला, जैन प्रतिमाएं, जैन मन्दिर, जैन साहित्य सभी का उन्हें गहरा ज्ञान था। यदि कोई तथ्य के विरुद्ध लेख लिखता; तो वह उनकी पैनी दृष्टि से बच नहीं पाता। वे उसका तर्कपूर्ण खण्डन और वास्तविक तथ्यों से पाठक समुदाय को

अवगत कराते हैं ।

—डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, आगरा

पूर्व अंकों की भांति इस अंक में भी समाज में प्रचलित मूढ़-ताओं, कुरीतियों, धार्मिक समारोहों के अतिरेक पर आपकी बेबाक टिप्पणियां आत्म-चिन्तन व निरीक्षण हेतु प्रेरणा दे रही हैं ।

—श्री ज्ञानचन्द खिन्दूका, जयपुर

समाचार विमर्श में आपने कुछ सार्थक प्रश्न खड़े कर सबको झकझोरने का बहुत ही सही प्रयास किया है, परन्तु प्रश्न है—सुनता कौन है, किसकी है ? सब अपनी ढफली अपना राग अलापने में लगे हैं । खेर, सार्थक पत्रकारिता का कार्य तो सत्य से साक्षात्कार कराने एवम् स्थिति के सही-गलत का पाठकों को ज्ञान कराना मात्र है ।

—डा० चीरंजी लाल बगड़ा, कलकत्ता

शोधादर्श का जुलाई ९९ का अंक मिला, बहुत ही अच्छा लगा, खास कर डॉ० जगदीश चन्द्र जैन, चिन्तन कण, जरा सोचिये, विद्या विनोद काला, कामदेव मन्दिर, समाचार विविधा, आदि ।

—श्री सुभाष रणदिवे, डोंबिवली, (प०), जिला ठाणे

सम्पादकीय 'न भूतो न भविष्यति' अपने आप में दिग्भ्रमित को मार्गदर्शन हेतु प्रकाश स्तम्भ के रूप में गौरव को प्राप्त है । आपका सुझाव "तीस-चौबीसी मन्दिर के निर्माण एवं उसके व्यय-साध्य पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के करोड़ों रुपयों को यदि सम्मेदाचल विकास पर खर्च किया जाता तो ऐसा विकास हो जाता जिस पर जैन समाज को गर्व होता" अत्यन्त व्यावहारिक बुद्धिमत्ता-पूर्ण एवं समयानुकूल है । श्री धर्मेन्द्र मोहन सिन्हा का लेख "वर्ण व्यवस्था और अस्पृश्यता" सार्थक चिन्तन का फल है । उनका यह कथन अत्यन्त सटीक है कि "वर्ण व्यवस्था कोई सामाजिक व्यवस्था नहीं अपितु प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के लिये कल्याण व्यवस्था है ।" सभी धर्म-ग्रन्थों के प्रमाण उद्धृत करने से लेख में गम्भीरता आई है । डॉ० ऋषभ चन्द्र जैन 'फौजदार' का लेख "प्राकृत भाषाएं" भी विद्वत्तापूर्ण है ।

—श्री लालचन्द्र जैन 'राकेश', गंज बासोदा

'गुरुगुणकीर्तन' शीर्षक से श्री रमा कान्त जी का शोध निबन्ध अनुपम और प्रभावोत्पादक है। 'आत्म शोधन' द्वारा श्रावक एवं साधु शिक्षा ग्रहण करके अपनी आत्मा के कल्याण पथ पर अग्रसित हो सकेगा। 'सम्मेदशिखर' में पंचकल्याणक महोत्सव की भर्त्सना विद्वान लेखकों द्वारा की गई। वह इस प्रकार के आयोजन कर्ताओं के लिए विचारणीय है। भविष्य में इस प्रकार के कार्य न किए जायें तो अच्छा है। 'काम मन्दिर' से मैथुन, संभोग, शृंगार आदि सामग्री के संकलन स्थल का ही आभास पढ़ने वालों को होगा प्रत्यक्ष अवलोकन सब के द्वारा सम्भव नहीं है। अतः 'काम मन्दिर' एवं साधु मन्दिर' निर्माण की पद्धति पर रोक लगाना आवश्यक है। 'अभिनन्दन' तथा 'आभार' बुद्धिजीवियों के लिये प्रतिष्ठा एवं गौरवान्वित करने का सुन्दर और प्रभावशाली कार्य है। शोधादर्श की सम्पूर्ण सामग्री नवीन विद्वानों का समुचित मार्गदर्शन करने में समर्थ होगी।

—**प्रो० सुरेन्द्र कुमार जैन**, सिहोरा (जबलपुर)

वर्तमान दि० जैनाचार्यों द्वारा प्रेरित पंच कल्याणक प्रतिष्ठाएं आत्म शुद्धि एवं धर्म प्रभावनावर्धक न होकर मात्र तमाशे का रूप लेती जा रही हैं। प्रतिष्ठा काल में हास्य कवि सम्मेलन, नाटक, सिनेमा की तर्ज पर भजन गायन व पुरुष एवं महिलाओं द्वारा नृत्य, तमाशा नहीं तो और क्या है? और इसीलिए नाटक प्रिय जनता इनमें अधिक संख्या में उपस्थित होती है जबकि प्रवचन काल में उनकी संख्या काफी कम हो जाती है। इन प्रतिष्ठाओं में मांसाहारी बैंड वाले, हाथी वाले, लाउड स्पीकर वाले ही लाभान्वित होते हैं। प्रतिष्ठा काल में हृदय हीन आडम्बर पूर्ण व्यवहार (जैसा कि सम्मेद शिखर प्रतिष्ठा काल में हुआ था) हृदय को पीड़ा से भर देता है। इसी प्रकार अनेक अशोभनीय घटनाओं को दृष्टि में रखते हुए, ये प्रतिष्ठाएं न हो कर इनके स्थान पर प्राचीन तीर्थों-मन्दिरों-मूर्तियों का जीर्णोद्धार धर्म संरक्षण एवं प्रभावना वृद्धि के लिए अत्यावश्यक है।

—**श्री गुलाब चन्द्र जैन**, विदिशा

शोधादर्श-३८ में सर्वप्रथम 'समाज दर्शन' पढ़ा। १९३८ और १९४६ में पं० अजित प्रसाद जी ने जो दुख/व्यथा/चिन्ता प्रकट की

है वह कितनी दीर्घ दृष्टि युक्त थी यह आज के माहौल में स्पष्ट हो रही है। आप भी समय-समय पर तीखी पर दर्द भरी बातें प्रस्तुत करते रहते हैं। 'आत्म शोधन' लेख में डा० मनोरमा जैन ने भी प्रश्नोत्तर के माध्यम से अनेक लोगों के मन में उठते प्रश्नों के उत्तर दिये हैं—हालांकि सब लोग ऐसे प्रश्न पूछ नहीं सकते, वह मन में ही दबे रहते हैं। आज MONEY और NAME का ही बोलबाला है।

–श्रीमती गीता जैन, मुम्बई

शोधादर्श जुलाई ९९ का अंक मेरे हाथों में है। दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि यह स्पष्टरीत्या सामाजिक, धार्मिक कुरीतियों पर सबल एवं सक्षम प्रहार करने वाला पत्रास्त्र है, जागृत प्रहरी की भांति यह सचेतक है। डा० शशि कान्त जी. सम्पादक द्वारा लिखित 'समाज दर्शन' आलेख सामाजिक प्रतिलेखन का कार्य करता दिखता है। निम्न विशेषतायें उल्लेखनीय हैं :—

१. किन्हीं परमेष्ठी के चित्र न होने के कारण अविनय का हेतु नहीं है। प्राय: पत्र-पत्रिकाओं पर प्रकाशित चित्र बजाय सम्मान के असम्मान के कारण बनते हैं।

२. बेबाक समीक्षा, लेखक की निर्भीकता का परिचय देती है जो आवश्यक है।

३. डा० ज्योति प्रसाद जी के इतिहासज्ञ व्यक्तित्व के इसमें दर्शन होते हैं, अत: यह प्राचीन को अर्वाचीन से जोड़ती दृष्टिगत होती है।

४. नाम के अनुरूप यह शोध-शोध कर आदर्श और अनादर्श के अन्तर को स्पष्ट व्याख्यायित करने में सक्षम सिद्ध होती है।

–पं० शिवचरन लाल जैन, मैनपुरी

I liked your poem 'मैं कगार पर खड़ा' very much.

—Sri Shirish Kant, Mawana

It attracted me much at the first sight.

—Sri Moolchand Jain, Harda

Every issue contains a new information and something which is like an eye-opener. I admire

your frank and bold expression of views on various current topics and situations in the Jain community, because without exception, I have found myself agreeing with you in every case.

—**Sri S. P. Jain**, I.A.S. (Retd.), Meerut

शोधादर्श मुख्य पत्रिका में आप स्वयं के सारगर्भित लेख, आगम निष्ठ विद्वानों के शोधपूर्ण लेखों से अपूर्व जानकारी प्राप्त हो रही है एवं धर्म प्रभावना हो रही है। आपके इस सराहनीय कार्य के प्रति लाखों पाठकगण, पठन कर लाभान्वित हो रहे हैं और सदैव कृतज्ञ रहेंगे।

–पं० **सुमेर चन्द जैन**, सं० **वर्णी प्रवचन**, मुजफ्फरनगर

शोधादर्श के सभी आलेख शोधात्मक, चिन्तनपरक और मननीय होते हैं। इनकी विशेषता है कि ये अपने कथ्य को बिना लाग-लपेट, लल्लो-चप्पो के अदम्य साहस के साथ प्रस्तुत करते हैं, वर्तमान परिस्थितियों से अवगत कराते हैं और अपने प्रेरणाप्रद सुझाव भी देते हैं। अंक ३८ का सम्पादकीय 'न भूतो न भविष्यति : तीस-चौबीसी मन्दिर का प्रतिष्ठा महोत्सव' ने हृदय उद्वेलित कर दिया है। यह सत्य है कि वर्तमान में कतिपय श्रमण तो सिद्धि के स्थान पर प्रसिद्धि और दर्शन के स्थान पर प्रदर्शन की यशाकांक्षा मन में संजोए रहते हैं और धर्म प्रभावना के नाम पर अभूतपूर्व बनने का प्रयास करते हैं। वे तो अभूतपूर्व नहीं बन पाते पर धर्म को अवश्य ही कलंकित कर देते हैं। डॉ० मनोरमा जैन का आलेख 'आत्म शोधन' भी मानव को सोचने के लिये मजबूर करता है। पत्रिका की समग्र शोध सामग्री मौलिक, नवीन, जिज्ञासोत्पादक, प्रेरक तथा रोचक है। समाचार विविधा, उसकी टिप्पणियाँ यथार्थ वस्तु स्थिति का बोध कराती हैं। आपकी निर्भीक लेखनी और श्रम प्रशंसनीय है।

–**डॉ० (कु०) आराधना जैन 'स्वतन्त्र'**, गंज बासोदा

श्री क्षेत्र शिखर जी पर भीषण अग्निकाण्ड पर **शोधादर्श** में आपने जो सविस्तार वृत्तांत दिया है, वह पढ़कर मैं दंग रह गयी।

इतनी दुर्घटना घटने पर भी पंचकल्याणक उत्सव जारी रहा, और नृत्य-गायन के कार्यक्रम भी यथासांग पेश किये गये, और बचे हुए लोगों ने भी इसमें रस लिया, यह कैसा हृदय शून्य बर्ताव है ? समाज में सहधर्मी बन्धु भाव कम होता जा रहा है, इस बात का यह निदर्शक है।

—श्रीमती वासंती शहा, पुणे

सदा की भांति गुरुगुण-कीर्तन के अन्तर्गत जयधवल टीका की विवेचना ज्ञानवर्द्धक है। सम्पादकीय के अन्तर्गत तीस-चोबीसी मन्दिर के प्रतिष्ठा महोत्सव सम्बन्धी जानकारी व यात्रियों की सुरक्षा पर दृष्टि डाल कर व्यवस्था सुचारू रूप से करने हेतु प्रयास, जन कल्याण की दृष्टि से सार्थक कहा जायेगा। कवि धनपाल रचित 'सच्चरिउ महावीर उत्साह' एवं प्राकृत भाषाओं पर संक्षिप्त दृष्टि सामान्य ज्ञान की वृद्धि में सहायक हैं। वर्ण व्यवस्था और अस्पृश्यता अच्छा चिन्तनीय विषय है जिस पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए। विभिन्न वर्णों के स्वभाव उनके भविष्य के कार्यकलापों को समझने में सहायक हैं। 'मैं कगार पर खड़ा' कविता अच्छी प्रेरणास्पद है। पं० अजित प्रसाद जैन व डा० ज्योति प्रसाद जैन जैसे महारथियों की सेवाओं की सराहना उनके प्रति आदर का भाव है—जो लोगों के लिए जरूरी समझा जाना चाहिए। साहित्य सत्कार के अन्तर्गत विभिन्न पुस्तकों की जानकारी देना उनके प्रति ललक जगाने को पर्याप्त है। **शोधादर्श** के अंक प्रायः किसी न किसी दृष्टि से महत्वपूर्ण व संग्रहणीय बन जाते हैं। इसमें सम्पादक की कुशलता व लेखकों का हार्दिक सहयोग दोनों ही का सामंजस्य होता है। इस नाते सभी बधाई के पात्र हैं।

—श्री मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर

तीस-चोबीसी मन्दिर के प्रतिष्ठा-महोत्सव की विसंगतियों पर मननपरक सम्पादकीय—"न भूतो न भविष्यति:………" में सम्बन्धित प्रतिष्ठा महोत्सव में दृष्टिगत हुई विविध विसंगतियों के साथ-साथ, ऐसे अन्य महोत्सवों में आज के काल में दृष्टिगत हो

रही विसंगतियों पर भी सम्यक् विचार किया गया है। दिशाबोध में मुनि-भक्त के रूप में अपनी पहचान रखने वाले विद्वानद्वय—श्री नीरज जैन एवं प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन जैसे लेखकों के भी अन्तर्मन को झकझोरने वाले 'चुभते प्रश्नों' पर आपका स्पष्ट मन्तव्य पुनः-पुनः उन प्रश्नों का सम्यक् उत्तर खोजने एवं उस उत्तरानुरूप प्रवृत्ति का सद् आह्वान करता है। भीषण अग्निकाण्ड के बावजूद मानवीय संवेदनाओं का मखौल उड़ाते हुए आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों के नाम पर गायन और नर्तन के विरोध पर अपनी सहमति के अतिरिक्त यह भी कहना चाहूंगा कि 'धर्म' के नाम पर 'धार्मिक कार्यक्रमों' में आज व्याप्तता को प्राप्त हो रही ग्लैमर–युक्त पापानुबन्धी प्रवृत्तियों से समाज को सचेत करने को नितान्त आवश्यकता है क्योंकि—"......धर्मस्थाने कृतं पापं, वज्रलेपो भविष्यति"। "जरा सोचिये" में वयोवृद्ध विद्वान पं० पद्मचन्द जी शास्त्री के विचारों की जो समीक्षा जस्टिस श्री एम० एल० जैन ने की है, वह बहुत ही सधी हुई एवं मुक्त कण्ठ से प्रशंसनीय है, क्योंकि समीक्षा का यह रूप भिन्न अथवा कथंचित भिन्न विचारों की भी आगम-कथनों से तार्किक सामंजस्यता को बिठाता है एवं आगमोद्धरणों पर सम्यक् श्रद्धान को सुदृढ़ करते हुए, विचारों की भिन्नता का निरसन भली प्रकार करता है।

—श्री मनोज कुमार जैन 'निर्लिप्त', अलीगढ़

परिणामों से ही हम कर्मों की पहचान करते हैं। हम आश्रित हैं आचार्यों के कथनों पर और आचार्य सर्वज्ञ परमात्मा पर। तमाम तर्क के बावजूद परमात्मा कहीं न कहीं आ गया। शंका पर हमारा अन्तिम अस्त्र है 'आगम-आदेश'। यही अन्य दर्शन भी करते हैं, उनके भी आगम हैं, जिनका मूल स्रोत भी परमात्मा ही है। मैंने भी एक आगम आदेश की कल्पना कर डाली है—

निर्वस्त्रा मुक्तिर्नराणाम्, नारीणां सवस्त्रा भवेत्
मुक्तिर्नास्ति कलौ युगे, सर्वज्ञोपदिष्टंमिदम्।

यदि कोई आचार्य ऐसा कुछ लिख जाते तो दिगम्बर जैन महिलाओं की भी मुक्ति सम्भव हो जाती!

शोधादर्श ३८ में 'समाचार विमर्श' में आपके विचार पढ़े। मन्दिरों की और उनमें भी मूर्तियों की भरमार, साधुओं की बढ़ती संख्या और उनसे जुड़ा ताम-झाम—यहीं तक सिमट कर रह गई है तीर्थंकरों की दिव्य वाणी। कल मुनि तरुणसागर जी का भाषण जी टी० वी० पर सुना तो लगा कि विचार रजनीश के और भाषा भी रजनीश की ही और उस पर तरुणसागर जी की विचित्र शैली। काफी लोकप्रिय है। मूर्तियों की दशा देखना है तो सांगानेर (जयपुर) में जो कुछ हुआ उसे देखिये। मुनिवर सुधासागर जी धरातल से नीचे उतरे। नागराज ने रास्ता रोका परन्तु मुनि जी की बात सुन-समझ कर उसने रास्ता दे दिया। फिर मुनि जी धूल भरी अनगिनत मूर्तियों में से चन्द लेकर ऊपर आये, उनका अभिषेक चला, लोग कृतार्थ हुए और मूर्तियां वापस उसी अंधेरी कोठरी में रखकर दीवार भी खड़ी कर दी गई। क्या यह उन मूर्तियों की अवज्ञा नहीं हुई ? जैन जनता को उनके दर्शनों के पुण्य-लाभ से चन्द वर्षों तक वंचित कर दिया; आखिर क्यों ?

शोधादर्श-३८ में एक लेख अस्पृश्यता पर है जिस पर भाई शशि कान्त ने पृ० १६६-१६८ पर अपने विचार भी दर्ज किये हैं। वे तो ये जानते ही हैं कि **आदिपुराण** के अनुसार अस्पृश्यता को कायम करने वाले थे महाराज ऋषभदेव। वर्ण का आधार कर्म वृत्ति है जैसा कि उस गाथा में वर्णित है जो उनने अपनी टिप्पणी में उद्धृत की है। **गीता** भी यही कहती है—

> चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागत:
> तस्य कर्तारपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्। ४/३

यह सब कुछ होते हुए भी मूल आधार तो गोत्र कर्म के परमाणु हैं जो जीव को नीच/उच्च श्रेणियों में विभाजित करते हैं। हमारे तीर्थंकर ऋषभदेव और महावीर (?) को छोड़ कर सब क्षत्रिय कुलोत्पन्न हैं परन्तु आज तक हमने उन्हें ब्राह्मण वर्ण में नहीं रखा। सवाल वर्ण व्यवस्था, वर्ग व्यवस्था का नहीं है जितना inter-mobility का है। एक वर्ण से दूसरे वर्ण में एक व्यक्ति तो क्या एक परिवार भी क्या एक समूह (जाति) भी नहीं जा सकता। यही इस वर्ण व्यवस्था में दोष है।

—जस्टिस एम० एल० जैन

इस अंक के लेखक

श्री अजित प्रसाद जैन : पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ-२२६००४

डा० अनिल कुमार जैन : बी-३६, सूर्य नारायण सोसायटी, विसत पेट्रोल पम्प के सामने, साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५

जस्टिस एम० एल० जैन : 'अलकनन्दा', २१६, मन्दाकिनी एन्क्लेव, नई दिल्ली-११००१९

श्री कैलाश चन्द जैन : से०नि० मण्डल अभियन्ता फोन्स, ३७/७बी, खेलात बाबू लेन, कलकत्ता-७०००३७

डा० ज्योति प्रसाद जैन (स्व०) : विश्व-विश्रुत विद्वान

श्री धन्य कुमार जैन : पूर्व विधायक; सिहोरा, जिला जबलपुर-४८३२२५

श्री नरेन्द्र सिंह चौधरी : से० नि० अधीक्षण अभियन्ता, उ० प्र० लो०नि०वि०; ए-१६४, डिफेन्स कालोनी, मवाना रोड, मेरठ-२५०००१

श्री नरेश गुप्त : सी-१३०, सेक्टर नं० १९, नोएडा— गौतमबुद्ध नगर-२०१३०१

श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' : नरेन्द्र जैन क्लाथ हाउस, २३, मोहन मार्केट, दूसरी गली, अमीनाबाद, लखनऊ-२२६०१८

श्री रमा कान्त जैन : ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

श्री राजीव कान्त जैन : सीनियर डी० एस० टी० ई०, पश्चिम रेलवे, रेलवे आफिसर्स बंगला नं० ५, कोठी कम्पाउन्ड, राजकोट-३६०००१

डा० सुरेन्द्र कुमार जैन : संग्रहाध्यक्ष, दिगम्बर जैन मूर्ति संग्रहालय, जयसिंहपुरा; २२, भक्त नगर, दशहरा मैदान, उज्जैन-४५६०१०

डा० (श्रीमती) सूरजमुखी जैन : से०नि० प्राचार्या; 'अलका', ३५, इमामबाड़ा, मुजफ्फरनगर-२५१००२

श्री शांतिलाल के० शहा : कुसुम बंगला, राजवाड़ा, गणेश दुर्ग, सांगली-४१६४१६

डा० शशि कान्त : ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

अनुक्रमणिका

[अंक १ से २५ में प्रकाशित विविध सामग्री की अनुक्रमणिका शोधादर्श-२५ में पृ० १०१-२४ पर, अंक २६ से ३० की अनुक्रमणिका शोधादर्श-३० में पृ० ३३३-४१ पर, अंक ३१ से ३६ की अनुक्रमणिका शोधादर्श-३३ में पृ० ३०२-०६ पर, और अंक ३४ से ३६ की अनुक्रमणिका शोधादर्श-३६ में पृ० ३५३-५९ पर प्रकाशित है। उसी के अनुक्रम में १९९९ में प्रकाशित अंक ३७ से ३९ की अनुक्रमणिका नीचे दी जा रही है। पृ० सं० कोष्ठक में है।]

लेखक-लेख अनुक्रमणिका

लेखक	लेख	अंक
जस्टिस एम० एल० जैन :	244. कामदेव मन्दिर —एक विमर्श	39 (265-66)
डा० ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार' :	245. प्राकृत भाषायें	38 (151-57)
श्री कैलाश चन्द जैन :	246. गिलास आधा भरा है!	39 (266-67)
श्री कैलाश भूषण जिन्दल :	247. Man-made God	37 (55-57)
श्री गुलाब चन्द्र जैन :	248. जैन परम्परा में देव समूह	37 (43-47)
डा० (श्रीमती) जैनमती जैन :	249. भगवान पार्श्वनाथ द्वारा उपदिष्ट चातुर्याम धर्म	37 (27-32)
डा० ज्योति प्रसाद जैन :	250. दोषाणां कारणं मद्यम्	37 (9-11)
	251. Keynote of the Jaina Path : Renunciation	38 (135-38)
	252. Proto-Historic Tradition	39 (231-35)
श्री नरेन्द्र सिंह चौधरी :	253. धर्म का मर्म-अहिंसा	39 (260-64)
पं० नेमचन्द डोणगांवकर :	254. षट्खण्डागम का खण्ड-विभाग	37 (38-42)
पं० पद्म चन्द शास्त्री :	255. कैन्सर में तब्दील होती शौरसेनी की गांठ	37 (49-54)
श्री पन्ना लाल जैन :	256. कबीर साहित्य में जैन अध्यात्म की झलक	37 (35-37)

डा० (ब्र०) मनोरमा जैन : 257. आत्म शोधन 38 (146-48)

डा० मोहन भण्डारी : 258. ॐ—एक विमर्श 37 (48)

डा० रञ्जन कुमार : 259. योग परम्परा 37 (17-26)

डा० लक्ष्मी मल्ल सिंघवी : 260. The Jain Declaration on Nature 38 (172-73)

श्री वेद प्रकाश गर्ग : 261. कवि धनपाल रचित 'सच्चरिय महावीर उत्साह' 38 (143-46)

डा० सुरेन्द्र कुमार आर्य : 262. पश्चिमी भारत के जैन हस्तलिखित-ग्रन्थ भण्डार 39 (259-60)

डा० (श्रीमती) सूरजमुखी जैन : 263. जैन दर्शन में मोक्ष तत्त्व—एक वैज्ञानिक विश्लेषण 39 (247-57)

डा० शशि कान्त : 264. समाज दर्शन 38 (168-71)

265. राष्ट्र की अस्मिता संकट में 39 (268-71)

266. अहिंसा महाकुम्भ—एक नया तमाशा 39 (304-06)

शोध सारांश :

शोध प्रबन्ध — शोधकर्ता

20. पं० राजमल्ल कृत पंचाध्यायी में प्रतिपादित जैन दर्शन —डा० (श्रीमती) मनोरमा जैन 37 (58-64)

चिन्तन कण :

19. निगंट्ठ नातपुत्त —श्री अजित प्रसाद जैन 37 (71-74)

20. ज़रा सोचिये —जस्टिस एम० एल० जैन 38 (157-62)

विचार बिन्दु :

18. जैन पंथोपपंथी अपनी भूमिका पर विचार करें —श्रीमती वासंती शाह 37 (68-70)

19. वर्ण व्यवस्था और अस्पृश्यता —श्री धर्मेन्द्र मोहन सिन्हा 38 (162-66) —डा० शशि कान्त (166-68)

20. भट्टारक—तब और अब —श्री अजित प्रसाद जैन 39 (277-79)

सम्पादकीय अग्रलेख : —श्री अजित प्रसाद जैन

22. पदवियों की मर्यादा का भी ध्यान रखें 37 (12-17)

23. न भूतो न भविष्यति : तीस-चौबीसी मन्दिर का प्रतिष्ठा महोत्सव 38 (139-42, 175-78)

24. बालाचार्य जी की विचित्र आध्यात्मिक यात्रा से उभरे कुछ प्रश्न 39 (236-47)

परिचर्चा :

9. भगवान ऋषभदेव की निर्वाण भूमि

श्री अजित प्रसाद जैन 37 (75-81)

डा० अनिल कुमार जैन (77)

श्री गुलाब चन्द्र जैन (77-78)

श्री आदित्य जैन (78-79)

10. विद्वत्-परिषद के चुनाव और विभाजन

श्री अजित प्रसाद जैन 39 (272-76)

डा० रमेश चन्द्र जैन (272-73)

डा० राजा राम जैन (273-75)

11. जिज्ञासा—पुद्गल और चेतन :

श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' 39 (280-82)

कर्म और धर्म : श्री धन्य कुमार जैन (282-83)

जैन धर्म की प्राचीनता : श्री शांतिलाल के० शहा (283)

बनारसी दास और कबीर : डा० अनिल कुमार जैन (283-84)

भारत में मानव इतिहास : श्री नरेश गुप्त (284)

टिप्पणी डा० शशि कान्त (284)

समाचार विमर्श : —श्री अजित प्रसाद जैन

83. नवोदित तीर्थ—योगीन्द्र गिरि 37 (96-97)

84. बिच्छु और विद्वान—एक समाना (97-99)

85. सेलो फोन से बात करते मुनिश्री (99-100)

86. विद्वत् परिषद के चुनाव और विभाजन (101-04)

87. शास्त्रि परिषद—हीरक जयन्ति व वार्षिक अधिवेशन 38 (194-97)

88. कामदेव मन्दिर (197-200)

89. विमल समाधि मन्दिर—साधु मन्दिर (200-02)

90. बालाचार्य का वर्षायोग 39 (302-03)

91. पंच-कल्याणक प्रतिष्ठाएं सादगी से (303)

गुरुगुण-कीर्तन : —श्री रमा कान्त जैन
36. प्रभाचन्द्र 37 (5-8, 32-34)
37. गुणधर 38 (131-134)
38. विमलार्य 39 (227-30, 257-58)
रिपोर्ट :
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०
15. प्रगति प्रतिवेदन वर्ष 1998-99
—श्री अजित प्रसाद जैन 39 (285-88)
अन्य रिपोर्ट :
21. इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन की जन्म जयन्ति
—श्री नलिन कान्त जैन 37 (81-83)
22. इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन की
११वीं पुण्य तिथि 38 (179-80)
23. 'गिलास आधा भरा है' का विमोचन
—श्री नलिन कान्त जैन (180-83)
24. शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस—श्रुतपंचमी
—कु० हेमा सक्सेना (184)
परिचय/स्मरण :
33. डा० जगदीश चन्द्र जैन —डा० अभय प्रकाश जैन 38 (149-51)
34. श्री विद्या विनोद काला —श्री विवेक काला (185-86)
पद्य रचनायें :
श्री अनिल 'बांके' : 49. कवि स्वतन्त्र है 38 (182)
डा० महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' : 50. काव्य-सुमनांजलि 37 (82-83)
51. गिलास आधा भरा है 38 (182-83)
श्री राजीव कान्त जैन : 52. बहुत चले, अभी पर
बहुत जाना है 37 (65-66)
53. कारगिल के जवान 39 (271)
श्री वीरेन्द्र अंशुमाली : 54. अपनी पीड़ा का भी तुम
उपचार करोगे 37 (67)
डा० शशि कान्त : 55. मैं कगार पर खड़ा 38 (174)
56. क्रान्ति की स्वर-लहरी 39 (269)
57. जन-मन का आक्रोश (270)
58. बीस-सूत्री कार्यक्रम (271)

श्रीमती शारदा जैन : 59. हे विद्या-वारिधि तुम्हें नमन 38 (180)

साहित्य सत्कार (समीक्षा) :

श्री अजित प्रसाद जैन 37 (84), 38 (187-88), 39 (288-90)
श्री रमा कान्त जैन 37 (84-91), 38 (188-89), 39 (291-94)
डा० शशि कान्त 37 (91-95), 38 (189-92), 39 (294-301)
डा० परमानन्द जड़िया 38 (192-93)

विविध स्तम्भ : संकलन —श्री रमा कान्त जैन

समाचार विविधा 37 (108-14), 38 (205-08), 39 (310-18)
अभिनन्दन 37 (105-08), 38 (203-05), 39 (307-10)
शोक संवेदन 37 (114-15), 38 (209), 39 (318-20)
आभार 37 (115-16), 38 (210), 39 (320)
लेखक परिचय 37 (126), 38 (222), 39 (333)

पारखी पाठक :

335. डा० अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर 37 (117), 39 (320)
336. डा० (कु०) आराधना जैन 'स्वतन्त्र', गंज बासौदा 39 (329)
337. डा० ए० एल० श्रीवास्तव, लखनऊ 37 (123-24)
338. जस्टिस एम० एल० जैन, नई दिल्ली 39 (331-32)
339. डा० ओम प्रकाश त्रिवेदी, लखनऊ 37 (123 25)
340. श्री कपिल कुमार जैन, मेरठ 38 (210)
341. श्री कुन्दन लाल जैन, दिल्ली 39 (325)
342. डा० कैलाश नाथ द्विवेदी, कोंच (जालौन) 37 (117), 38 (212-13)
343. श्रीमती गीता जैन, मुम्बई 39 (327-28)
344. श्री गुलाब चन्द्र जैन, विदिशा 39 (327)
345. श्री गोपी लाल अमर, दिल्ली 39 (324)
346. श्री चन्द्रकान्त बाली, दिल्ली 39 (324)
347. डा० चीरंजी लाल बगड़ा, कलकत्ता 39 (326)
348. श्री जमना लाल जैन, वाराणसी 38 (218-20)
349. डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, आगरा 37 (125), 38 (217), 39 (325-26)
350. श्री तिलोक मुनि, राजकोट 38 (212)
351. पं० नेमचन्द डोणगांवकर, देऊलगांवराजा 37 (123)

352. पं० पद्मचन्द्र शास्त्री, नई दिल्ली 37 [120], 38 [211]
353. डा० परमानन्द जड़िया, लखनऊ 37 [121-22], 38 [213-14]
354. डा० पी० जी० मिश्रीकोटकर, नागपुर 37 [119]
355. श्री प्रेम कुमार जैन, विदिशा 39 [325]
356. श्री मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर 37 [117], 38 [215-16], 39 [330]
357. श्री मनोज कुमार जैन 'निर्लिप्त', अलीगढ़ 37 [120-21], 38 [214-15], 39 [330-31]
358. श्री मनोहर मारवडकर, नागपुर 39 [323]
359. श्री महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, नई दिल्ली 38 [212]
360. डा० महेन्द्र राजा जैन, इलाहाबाद 39 [322]
361. श्री मुकुल मोती लाल जैन, कटनी 37 [123]
362. श्री मूलचन्द जैन, हरदा 39 [328]
363. श्री मोती लाल जैन 'विजय', कटनी 37 [122-23]
364. डा० रञ्जन कुमार, बरेली 38 [212]
365. डा० [श्रीमती] रमा जैन छतरपुर 37 [120]
366. डा० रमेश चन्द्र जैन, बिजनौर 38 [217]
367. कु० राखी जैन, कटनी 37 [123]
368. प्रो० डा० राजा राम जैन, आरा 38 [221]
369. श्री राजेन्द्र नगावत, इन्दौर 38 [211]
370. श्री रोहित कुमार जैन, लखनऊ 37 [117-18]
371. डा० लक्ष्मी मल्ल सिंघवी, नई दिल्ली 38 [210]
372. श्री लाल चन्द्र जैन 'राकेश', गंज बासौदा 38 [210-11], 39 [326]
373 श्रीमती लीलावती जैन, जलगांव/पुणे 39 [322]
374. श्रीमती वासंती शहा, पुणे 39 [329-30]
375. डा० विजय कुमार जैन, लखनऊ 39 [321]
376. डा० विनोद कुमार तिवारी, रोसड़ा [समस्तीपुर] 37 [119]
377. प्रो० विमल प्रकाश जैन, दिल्ली 37 [125]
378. श्रीमती विमला जैन, कटनी 37 [122-23]
379. श्री विवेक काला, जयपुर 38 [220]
380. श्री वेद प्रकाश गर्ग, मुजफ्फरनगर 37 [117]
381. श्री शान्ति प्रकाश जैन, मेरठ [328-29]
382. श्री शिरीष कान्त, मवाना [मेरठ] 39 [328]

383. पं० शिवचरन लाल जैन, मैनपुरी 39 [328]
384. डा० श्रीरंजन सूरिदेव, पटना 39 [321-22]
385. डा० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, लखनऊ 37 [120], 39 [324]
386. ब्र० सन्दीप 'सरल', बीना 38 [217-18]
387. श्री सुखमाल चन्द्र जैन, नई दिल्ली 37 [118-19], 38 [220-21], 39 [322]
388. श्रीमती सुधा बेन शेठ, राजकोट 38 [211]
389. श्री सुन्दर सिंह जैन, दिल्ली 38 [211-12], 39 [324]
390. डा० (श्रीमती) सुनीता कुमारी, रुड़की 37 [117]
391. श्री सुबोध कुमार जैन, आरा 37 [120]
392. श्री सुभाष रणदिवे, डोंबिवली (प०) 39 [326]
393. पं० सुमेर चन्द जैन, मुजफ्फरनगर 39 [329]
394. प्रो० सुरेन्द्र कुमार जैन, सिहोरा (जबलपुर) 39 [327]
395. श्री हुकम चन्द जैन, मेरठ 38 [216-17]
396. श्री ज्ञानचन्द खिन्दूका, जयपुर 39 [326]

——

विद्वानों, विद्यार्थियों और संस्थाओं के लिए रियायती पैकेज

ज्ञानदीप प्रकाशन, ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-226004 से **मात्र रु० 60/-** (साठ रुपये) डाक एवं प्रकीर्ण व्यय हेतु **मनीआर्डर** द्वारा भेज कर रु० 150/- मूल्य की निम्नलिखित पुस्तकें प्राप्त की जा सकती हैं :—

श्री रमा कान्त जैन कृत ललित निबन्ध संग्रह **गिलास आधा भरा है** और **डा. ज्योति प्रसाद जैन** कृत—

जैन-ज्योति : ऐतिहासिक व्यक्तिकोश प्रथम खण्ड (अ-अं),
उत्तर प्रदेश और जैन धर्म, रुहेलखण्ड-कुमायूं और जैन धर्म,
श्री महावीर जिन वचनामृत, श्री महावीर-जिन स्तवन,
महावीर युग और निर्वाणकाल, शाकाहार,
आत्मदर्शन एवं ज्ञानचिन्तामणि

आवश्यक

डा० ज्योति प्रसाद जैन के सभी ग्रन्थों और लेखों आदि का स्वत्वाधिकार (copyright) 'ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट' में निहित है। अतः उनकी किसी पुस्तक या लेख आदि को प्रकाशित करने के पहले ट्रस्ट के न्यासी सचिव श्री रमा कान्त जैन, ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-226004 से कृपया अनुमति अवश्य प्राप्त कर ली जाय।

डा० ज्योति प्रसाद जैन प्रणीत

Jainism, the oldest Living Religion (2nd ed.)
पार्श्वनाथ विद्यापीठ, आई० टी० आई० रोड, वाराणसी 221005 से
और **Essence of Jainism**
शुचिता पब्लिकेशंस, अभय कुटीर, सारनाथ, वाराणसी-211007 से प्राप्त की जा सकती हैं।

श्री रमा कान्त जैन प्रणीत

हिन्दी भारती के कुछ जैन साहित्यकार
जैन विद्या संस्थान, श्री महावीर जी-322220/सवाई मानसिंह रोड, जयपुर-302004 से प्राप्त की जा सकती है।